अध्याय
ग्यारह

विद्रोही और राज

1857 का आंदोलन और उसके व्याख्यान

10 मई 1857 की दोपहर बाद मेरठ छावनी में सिपाहियों ने विद्रोह कर दिया। हलचल की शुरुआत भारतीय सैनिकों से बनी पैदल सेना से हुई थी जो जल्द ही घुड़सवार फ़ौज और फिर शहर तक फैल गई। शहर और आसपास के देहात के लोग सिपाहियों के साथ जुड़ गए। सिपाहियों ने शस्त्रागार पर क़ब्ज़ा कर लिया जहाँ हथियार और गोला-बारूद रखे हुए थे। इसके बाद उन्होंने गोरों पर निशाना साधा और उनके बंगलों, साजो-सामान को तहस-नहस करना और जलाना-फूँकना शुरू कर दिया। रिकॉर्ड दफ़्तर, जेल, अदालत, डाकखाने, सरकारी खजाने, जैसी सरकारी इमारतों को लूटकर तबाह किया जाने लगा। शहर को दिल्ली से जोड़ने वाली टेलीग्राफ़ लाइन काट दी गई। अँधेरा पसरते ही सिपाहियों का एक जत्था घोड़ों पर सवार होकर दिल्ली की तरफ़ चल पड़ा।

चित्र 11.1
बहादुर शाह का चित्र

यह जत्था 11 मई को तड़के लाल क़िले के फाटक पर पहुँचा। रमज़ान का महीना था। मुग़ल सम्राट बहादुर शाह नमाज़ पढ़कर और सहरी (रोज़े के दिनों में सूरज उगने से पहले का भोजन) खाकर उठे थे। उन्हें फाटक पर हो-हल्ला सुनाई दिया। बाहर खड़े सिपाहियों ने जानकारी दी कि "हम मेरठ के सभी अंग्रेज़ पुरुषों को मारकर आए हैं क्योंकि वे हमें गाय और सुअर की चर्बी में लिपटे कारतूस दाँतों से खींचने के लिए मजबूर कर रहे थे। इससे हिंदू और मुसलमान, सबका धर्म भ्रष्ट हो जाएगा।" तब तक सिपाहियों का एक और जत्था दिल्ली में दाखिल हो चुका था और शहर के आम लोग उनके साथ जुड़ने लगे थे। बहुत सारे यूरोपियन लोग मारे गए, दिल्ली के अमीर लोगों पर हमले हुए और लूटपाट हुई। दिल्ली अंग्रेज़ों के नियंत्रण से बाहर जा चुकी थी। कुछ सिपाही लाल क़िले में दाखिल होने के लिए दरबार के शिष्टाचार का पालन किए बिना बेधड़क क़िले में घुस गए थे। उनकी माँग थी कि बादशाह उन्हें अपना आशीर्वाद दें। सिपाहियों से घिरे बहादुर शाह के पास उनकी बात मानने के अलावा और कोई चारा न था। इस तरह इस विद्रोह ने एक वैधता हासिल कर ली क्योंकि अब उसे मुग़ल बादशाह के नाम पर चलाया जा सकता था।

12 और 13 मई को उत्तर भारत में शांति रही। लेकिन जैसे ही यह ख़बर फैली कि दिल्ली पर विद्रोहियों का क़ब्ज़ा हो चुका है और बहादुर शाह ने विद्रोह को अपना समर्थन दे दिया है, हालात तेज़ी से बदलने लगे। गंगा घाटी की छावनियों और दिल्ली के पश्चिम की कुछ छावनियों में विद्रोह के स्वर तेज़ होने लगे।

1. विद्रोह का ढर्रा

यदि इन विद्रोहों को तारीख़ के हिसाब से सिलसिलेवार रखा जाए तो ऐसा लगता है कि जैसे-जैसे विद्रोह की ख़बर एक शहर से दूसरे शहर में पहुँचती गई वैसे-वैसे सिपाही हथियार उठाते गए। हर छावनी में विद्रोह का घटनाक्रम कमोबेश एक जैसा था।

1.1 सैन्य विद्रोह कैसे शुरू हुए

सिपाहियों ने किसी न किसी विशेष संकेत के साथ अपनी कार्रवाई शुरू की। कई जगह शाम के समय तोप का गोला दाग़ा गया तो कहीं बिगुल बजाकर विद्रोह का संकेत दिया गया। सबसे पहले उन्होंने शस्त्रागार पर क़ब्ज़ा किया और सरकारी ख़ज़ाने को लूटा। इसके बाद उन्होंने जेल, सरकारी ख़ज़ाने, टेलीग्राफ़ दफ़्तर, रिकॉर्ड रूम, बंगलों, तमाम सरकारी इमारतों पर हमला किया और सारे रिकॉर्ड जलाते चले गए। गोरों से संबंधित हर चीज़ और हर शख़्स हमले का निशाना था। हिंदुओं और मुसलमानों, तमाम लोगों को एकजुट होने और फ़िरंगियों का सफ़ाया करने के लिए हिंदी, उर्दू और फ़ारसी में अपीलें जारी होने लगीं।

फ़िरंगी, फ़ारसी भाषा का शब्द है जो संभवतः फ्रैंक (जिससे फ्रांस का नाम पड़ा है) से निकला है। इसे उर्दू और हिंदी में पश्चिमी लोगों का मज़ाक उड़ाने के लिए कभी-कभी इसका प्रयोग अपमानजनक दृष्टि से भी किया जाता है।

विद्रोह में आम लोगों के भी शामिल हो जाने के साथ-साथ हमलों का दायरा फैल गया। लखनऊ, कानपुर और बरेली जैसे बड़े शहरों में साहूकार और अमीर भी विद्रोहियों के गुस्से का शिकार बनने लगे। किसान इन लोगों को न केवल अपना उत्पीड़क बल्कि अंग्रेज़ों का पिट्ठू मानते थे। ज़्यादातर जगह अमीरों के घर-बार लूटकर तबाह कर दिए गए। सिपाहियों की क़तारों में हुए इन छिटपुट विद्रोहों ने जल्दी ही एक चौतरफ़ा विद्रोह का रूप ले लिया। शासन की सत्ता और सोपानों की सरेआम अवहेलना होने लगी।

चित्र 11.2
लखनऊ में ब्रिटिश लोगों के ख़िलाफ़ हमलें में आम लोग भी सिपाहियों के साथ आ जुटते हैं।

मई–जून के महीनों में अंग्रेज़ों के पास विद्रोहियों की कार्रवाइयों का कोई जवाब नहीं था। अंग्रेज़ अपनी ज़िंदगी और घर–बार बचाने में फँसे हुए थे। जैसा कि एक ब्रिटिश अफ़सर ने लिखा, ब्रिटिश शासन "ताश के क़िले की तरह बिखर गया।"

स्रोत 1

असामान्य समय में सामान्य जीवन

विद्रोह के महीनों में शहरों में क्या हुआ? उथल–पुथल के उन दिनों में लोग अपनी ज़िंदगी कैसे जी रहे थे? सामान्य जीवन किस तरह प्रभावित हुआ? विभिन्न शहरों की रिपोर्टों से पता चलता है कि सामान्य गतिविधियाँ अस्त–व्यस्त हो गईं थीं। *दिल्ली उर्दू अख़बार*, 14 जून 1857 की इन रिपोर्टों को पढ़िए :

> यही हालात सब्ज़ियों और साग (पालक) के भी हैं। लोग इस बात पर शिकायत कर रहे हैं कि बाज़ारों में कद्दू और बैंगन तक नहीं मिलते। आलू और अरबी अगर मिलती भी हैं तो बासी, सड़ी जिसे कुँजड़ों (सब्ज़ी बेचने वाले) ने रोक कर (जमाकर) रखा हुआ था। शहर में स्थित बाग़–बगीचों से कुछ माल चंद इलाकों तक पहुँच जाता है लेकिन ग़रीब और मध्यवर्ग वाले उन्हें देखकर बस होठों पर जीभ फिरा कर रह जाते हैं (क्योंकि वे चीज़ें खास लोगों के लिए ही हैं)।
>
> ... यहाँ एक और चीज़ पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए जिससे लोगों को बड़ा नुकसान हो रहा है। मामला यह है कि पानी भरने वालों ने पानी भरना बंद कर दिया है। ग़रीब शुरफ़ा (कुलीन लोग) खुद घड़ों में पानी भरकर लाते हैं और तब जाकर घर में खाना बनता है। हलालख़ोर हरामख़ोर हो गए हैं। कई दिनों से बहुत सारे मोहल्लों में कोई आमदनी नहीं हुई है और यही हालात बने रहे तो गंदगी, मौत और बीमारियाँ शहर की आबो–हवा ख़राब कर देंगी और शहर महामारी की गिरफ़्त में आ जाएगा, यहाँ तक कि आस–पास के इलाके भी उसकी चपेट में आ जाएँगे।

➲ इन दोनों रिपोर्टों तथा उस दौरान दिल्ली के हालात के बारे में इस अध्याय में दिए गए विवरणों को पढ़ें। याद रखें कि अख़बारों में छपी ख़बरें अकसर पत्रकार के पूर्वाग्रह या सोच से प्रभावित होती हैं। इस आधार पर बताएँ कि *दिल्ली उर्दू अख़बार* लोगों की गतिविधियों को किस नज़र से देखता था?

1.2 संचार के माध्यम

अलग–अलग स्थानों पर विद्रोह के ढर्रे में समानता की वजह आंशिक रूप से उसकी योजना और समन्वय में निहित थी। इसमें कोई शक नहीं कि विभिन्न छावनियों के सिपाहियों के बीच अच्छा संचार बना हुआ था। जब सातवीं अवध इर्रेग्युलर कैवेलरी ने मई की शुरुआत में नए कारतूसों का इस्तेमाल करने से इनकार कर दिया तो उन्होंने 48 नेटिव इन्फेंट्री को लिखा कि "हमने अपने धर्म की रक्षा के लिए यह फ़ैसला लिया है और 48 नेटिव इन्फेंट्री के हुक्म का इंतज़ार कर रहे हैं।" सिपाही या उनके संदेशवाहक एक जगह से दूसरी जगह जा रहे थे। लब्बोलुआब ये कि लोग बस बग़ावत के मंसूबे गढ़ रहे थे और उसी के बारे में बात करते थे।

स्रोत 2

सिस्टन और तहसीलदार

विद्रोह और सैनिक अवज्ञा के संदर्भ में सीतापुर के देसी ईसाई पुलिस इंसपेक्टर फ्रांस्वाँ सिस्टन का अनुभव हमें बहुत कुछ बताता है। वह मजिस्ट्रेट के पास शिष्टाचारवश मिलने सहारनपुर गया हुआ था। सिस्टन हिंदुस्तानी कपड़े पहने था और आलथी-पालथी मारकर बैठा था। इसी बीच बिजनौर का एक मुस्लिम तहसीलदार कमरे में दाखिल हुआ। जब उसे पता चला कि सिस्टन अवध में तैनात है तो उसने पूछा, "क्या ख़बर है अवध की? काम कैसा चल रहा है?" सिस्टन ने कहा, "अगर हमें अवध में काम मिलता है तो जनाब-ए-आली को भी पता चल जाएगा।" इस पर तहसीलदार ने कहा, "भरोसा रखो, इस बार हम कामयाब होंगे। मामला काबिल हाथों में है।" बाद में पता चला कि यह तहसीलदार बिजनौर के विद्रोहियों का सबसे बड़ा नेता था।

➲ विद्रोही अपनी योजनाओं को किस तरह एक-दूसरे तक पहुँचाते थे, इस बारे में इस बातचीत से क्या पता चलता है?
तहसीलदार ने सिस्टन को संभावित विद्रोही क्यों मान लिया था?

विद्रोहों की बनावट और जिन साक्ष्यों के आधार पर ऐसा लगता है कि इन विद्रोहों में एक योजना और समन्वय था, उनको देखकर कुछ अहम सवाल खड़े होते हैं। ये योजनाएँ कैसे बनाई गईं? योजनाकार कौन थे? मौजूदा दस्तावेज़ों के आधार पर इन सवालों के सीधे-सीधे जवाब देना कठिन है। फिर भी, एक घटना इस बारे में कुछ सुराग़ ज़रूर देती है कि ये विद्रोह इतने सुनियोजित कैसे थे। विद्रोह के दौरान अवध मिलिट्री पुलिस के कैप्टेन हियर्से की सुरक्षा का ज़िम्मा भारतीय सिपाहियों पर था। जहाँ कैप्टेन हियर्से तैनात था वहीं 41वीं नेटिव इन्फेंट्री भी तैनात थी। इन्फेंट्री की दलील थी कि क्योंकि वे अपने तमाम गोरे अफ़सरों को ख़त्म कर चुके हैं इसलिए अवध मिलिट्री का फ़र्ज़ बनता है कि या तो वे हियर्से को मौत की नींद सुला दें या उसे गिरफ़्तार करके 41वीं नेटिव इन्फेंट्री के हवाले कर दें। मिलिट्री पुलिस ने दोनों दलीलें ख़ारिज कर दीं। अब यह तय किया गया कि इस मामले को हल करने के लिए हर रेजीमेंट के देशी अफ़सरों की एक पंचायत बुलाई जाए। इस विद्रोह के शुरुआती इतिहासकारों में से एक, चार्ल्स बॉल ने लिखा है कि ये पंचायतें रात को कानपुर सिपाही लाइनों में जुटती थीं। इसका मतलब है कि सामूहिक रूप से कुछ फ़ैसले ज़रूर लिए जा रहे थे। क्योंकि सिपाही लाइनों में रहते थे और सभी की जीवनशैली एक जैसी थी और क्योंकि उनमें बहुत सारे प्राय: एक ही जाति के होते थे इसलिए इस बात का अंदाज़ा लगाना मुश्किल नहीं है कि वे इकट्ठा बैठकर अपने भविष्य के बारे में फ़ैसले ले रहे होंगे। ये सिपाही अपने विद्रोह के कर्ताधर्ता खुद ही थे।

चित्र 11.3
रानी लक्ष्मीबाई, एक प्रचलित चित्र

चित्र 11.4
नाना साहिब

1858 के अंत में जब विद्रोह विफल हो गया तो नाना साहिब भाग कर नेपाल चले गए। उनके भागने की घटना को नाना साहिब के साहस और बहादुरी की कहानी का हिस्सा बताया जाता है।

1.3 नेता और अनुयायी

अंग्रेज़ों से लोहा लेने के लिए नेतृत्व और संगठन ज़रूरी थे। इन लक्ष्यों को हासिल करने के लिए विद्रोहियों ने कई बार ऐसे लोगों की शरण ली जो अंग्रेज़ों से पहले नेताओं की भूमिका निभाते थे। जैसा कि हम पीछे देख चुके हैं, मेरठ के सिपाहियों ने सबसे पहले जो काम किए उनमें एक यह था कि वे फ़ौरन दिल्ली गए और उन्होंने बूढ़े हो चुके मुग़ल बादशाह से विद्रोह का नेतृत्व स्वीकार करने की दरख़्वास्त की। लेकिन इस निवेदन पर सहमति हासिल करने में भी वक़्त लगा। बहादुर शाह इस ख़बर पर भयभीत और बैचेन दिखाई दिए। बहादुर शाह ने नाममात्र का नेता बनने की ज़िम्मेदारी भी तब स्वीकार की जब कुछ सिपाही शाही शिष्टाचार की अवहेलना करते हुए जबरन लाल क़िले के मुग़ल दरबार में जा घुसे और बहादुर शाह के पास वाकई कोई चारा नहीं बचा था।

अन्य स्थानों पर भी, छोटे पैमाने पर ही सही, इसी तरह के दृश्य घट चुके थे। कानपुर में सिपाहियों और शहर के लोगों ने पेशवा बाजीराव द्वितीय के उत्तराधिकारी नाना साहिब के सामने बग़ावत की बागडोर संभालने के सिवा और कोई विकल्प ही नहीं छोड़ा था। झाँसी में रानी को आम जनता के दबाव में बग़ावत का नेतृत्व सँभालना पड़ा। कुछ ऐसी ही स्थिति बिहार में आरा के स्थानीय ज़मींदार कुँवर सिंह की थी। अवध में नवाब वाजिद अली शाह जैसे लोकप्रिय शासक को गद्दी से हटा दिए जाने और उनके राज्य पर क़ब्ज़ा कर लेने की यादें लोगों के ज़हन में अभी भी ताज़ा थीं। लखनऊ में ब्रिटिश राज के ढहने की ख़बर पर लोगों ने नवाब के युवा बेटे बिरजिस क़द्र को अपना नेता घोषित कर दिया था।

सभी जगहों पर नेता दरबारों से जुड़े व्यक्ति–रानियाँ, राजा, नवाब, ताल्लुक़दार–नहीं थे। अकसर विद्रोह का संदेश आम पुरुषों एवं महिलाओं के ज़रिए और कुछ स्थानों पर धार्मिक लोगों के ज़रिए भी फैल रहा था। मेरठ से इस आशय की ख़बरें आ रही थीं कि वहाँ हाथी पर सवार एक फ़क़ीर को देखा गया था जिससे सिपाही बार-बार मिलने जाते थे। लखनऊ में अवध पर क़ब्ज़े के बाद बहुत सारे धार्मिक नेता और स्वयंभू पैगम्बर-प्रचारक ब्रिटिश राज को नेस्तनाबूद करने का अलख जगा रहे थे।

अन्य स्थानों पर किसानों, ज़मींदारों और आदिवासियों को विद्रोह के लिए उकसाते हुए कई स्थानीय नेता सामने आ चुके थे। शाह मल ने उत्तर प्रदेश में बड़ौत परगना के गाँव वालों को संगठित किया। छोटा नागपुर स्थित सिंहभूम के एक आदिवासी काश्तकार गोनू ने इलाके के कोल आदिवासियों का नेतृत्व सँभाला हुआ था।

स्रोत 3

1857 के दो विद्रोही

शाह मल

शाह मल उत्तर प्रदेश के बड़ौत परगना के एक बड़े गाँव के रहने वाले थे। वह एक जाट कुटुम्ब से संबंध रखते थे जो चौरासी देस (चौरासी गाँव) में फैला हुआ था। इस इलाके की ज़मीन सिंचाई की सुविधाओं से लैस और उपजाऊ थी। यहाँ कि मिट्टी काली नम थी। बहुत सारे ग्रामीण संपन्न थे और लोग ब्रिटिश भूराजस्व व्यवस्था को दमनकारी मानते थे : लगान की दर ज़्यादा और वसूली सख़्त थी। नतीजा यह था कि किसानों की ज़मीन बाहरी लोगों के हाथ में जा रही थी। इलाक़े में आने वाले व्यापारी और महाजन ज़मीन पर क़ब्ज़ा करते जा रहे थे।

शाह मल ने चौरासी देस के मुखियाओं और काश्तकारों को संगठित किया। इसके लिए उन्होंने रात के साए में गाँव-गाँव जाकर बात की और लोगों को अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ विद्रोह के लिए तैयार किया। बहुत सारे दूसरे स्थानों की तरह यहाँ भी अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ आंदोलन एक व्यापक विद्रोह में तब्दील हो गया। अब विरोध उत्पीड़न और अन्याय के तमाम चिह्नों के ख़िलाफ़ होने लगा। किसान अपने खेत छोड़कर निकल पड़े और महाजनों व व्यापारियों के घर-बार लूटने लगे। बेदख़ल भूस्वामियों ने छिन चुकी ज़मीनों पर दोबारा क़ब्ज़ा कर लिया। शाह मल के आदमियों ने सरकारी इमारतों पर हमला किया, नदी का पुल ध्वस्त कर दिया और पक्की सड़कों को खोद डाला। इसकी एक वजह यह थी कि वे सरकारी फ़ौजों का रास्ता रोकना चाहते थे। दूसरी वजह यह थी कि पुलों और सड़कों को ब्रिटिश शासन का प्रतीक माना जाता था। उन्होंने दिल्ली में विद्रोह करने वाले सिपाहियों को रसद पहुँचाई और ब्रिटिश हेडक्वार्टर व मेरठ के बीच तमाम सरकारी संचार बंद कर दिया। स्थानीय स्तर पर राजा कहलाने वाले शाह मल ने एक अंग्रेज़ अफ़सर के बंगले में डेरा डाला, उसे "न्याय भवन" का नाम दिया और वहीं से झगड़ों और विवादों का फ़ैसला करने लगे। उन्होंने गुप्तचरी का भी हैरतअंगेज़ नेटवर्क स्थापित कर लिया था। कुछ समय के लिए लोगों को लगा कि फ़िरंगी राज ख़त्म हो चुका है और उनका राज आ गया है। जुलाई 1857 में शाह मल को युद्ध में मार दिया गया।

मौलवी अहमदुल्ला शाह

मौलवी अहमदुल्ला शाह 1857 के विद्रोह में अहम भूमिका निभाने वाले बहुत सारे मौलवियों मे से एक थे। हैदराबाद में शिक्षित शाह काफ़ी कम उम्र में ही उपदेशक बन गए थे। 1856 में उन्हें अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ जिहाद का प्रचार करते और लोगों को विद्रोह के लिए तैयार करते हुए गाँव-गाँव जाते देखा गया था। वे एक पालकी में बैठकर चलते थे। पालकी के आगे-आगे ढोल और पीछे उनके समर्थक होते थे। इसीलिए उन्हें लोग-बाग डंका शाह कहने लगे थे। ब्रिटिश अफ़सर इस बात से परेशान थे कि मौलवी के साथ हज़ारों लोग जुट रहे थे और बहुत सारे मुसलमान उन्हें पैगम्बर मानने लगे थे और समझते थे कि वह इस्लाम के आदर्शों से ओतप्रोत हैं। जब 1856 में वे लखनऊ पहुँचे तो पुलिस ने उन्हें शहर में उपदेश देने से रोक दिया। 1857 में उन्हें फ़ैज़ाबाद जेल में बंद कर दिया गया। रिहा होने पर उन्हें 22वीं नेटिव इन्फेंट्री के विद्रोहियों ने अपना नेता चुन लिया। उन्होंने चिनहाट के विख्यात संघर्ष में हिस्सा लिया जिसमें हेनरी लॉरेंस की अगुवाई वाली टुकड़ियों को मुँह की खानी पड़ी। मौलवी साहब को उनकी बहादुरी और ताकत के लिए जाना जाता था। बहुत सारे लोग मानते थे कि उनको कोई नहीं हरा सकता; उनके पास जादुई शक्तियाँ हैं और अंग्रेज़ उनका बाल भी बाँका नहीं कर सकते। काफ़ी हद तक इसी विश्वास के कारण उन्हें लोगों में इतना अधिकार प्राप्त था।

चित्र 11.5
हेनरी हार्डिंग, फ्रांसेस ग्रांट द्वारा बनाया चित्र, 1849
गवर्नर जनरल के तौर पर हार्डिंग ने सैनिक साज़ो-सामान के आधुनिकीकरण का प्रयास किया। उसने जिन एन्फ़ील्ड राइफ़लों का इस्तेमाल शुरू किया उनमें चिकने कारतूसों का इस्तेमाल होता था जिनके ख़िलाफ़ सिपाहियों ने विद्रोह किया था।

1.4 अफ़वाहें और भविष्यवाणियाँ

तरह-तरह की अफ़वाहों और भविष्यवाणियों के ज़रिए लोगों को उठ खड़ा होने के लिए उकसाया जा रहा था। जैसा कि हमने पीछे देखा, मेरठ से दिल्ली आने वाले सिपाहियों ने बहादुर शाह को उन कारतूसों के बारे में बताया था जिन पर गाय और सुअर की चर्बी का लेप लगा था। उनका कहना था कि अगर वे इन कारतूसों को मुँह से लगाएँगे तो उनकी जाति और मज़हब, दोनों भ्रष्ट हो जाएँगे। सिपाहियों का इशारा एन्फ़ील्ड राइफ़ल के उन कारतूसों की तरफ़ था जो हाल ही में उन्हें दिए गए थे। अंग्रेज़ों ने सिपाहियों को लाख समझाया कि ऐसा नहीं है लेकिन यह अफ़वाह उत्तर भारत की छावनियों में जंगल की आग की तरह फैलती चली गई।

इस अफ़वाह का स्रोत ढूँढा जा सकता है। राइफ़ल इंस्ट्रक्शन डिपो के कमांडेंट कैप्टेन राइट ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि दम दम स्थित शस्त्रागार में काम करने वाले "नीची जाति" के एक खलासी ने जनवरी 1857 के तीसरे हफ़्ते में एक ब्राह्मण सिपाही से पानी पिलाने के लिए कहा था। ब्राह्मण सिपाही ने यह कहकर अपने लोटे से पानी पिलाने से इनकार कर दिया कि "नीची जाति" के छूने से लोटा अपवित्र हो जाएगा। रिपोर्ट के मुताबिक, इस पर खलासी ने जवाब दिया कि "(वैसे भी) जल्दी ही तुम्हारी जाति भ्रष्ट होने वाली है क्योंकि अब तुम्हें गाय और सुअर की चर्बी लगे कारतूसों को मुँह से खींचना पड़ेगा।" इस रिपोर्ट की विश्वसनीयता के बारे में कहना मुश्किल है लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि जब एक बार यह अफ़वाह फैलना शुरू हुई तो अंग्रेज़ अफ़सरों के तमाम आश्वासनों के बावजूद इसे ख़त्म नहीं किया जा सका और इसने सिपाहियों में एक गहरा ग़ुस्सा पैदा कर दिया।

1857 की शुरुआत तक उत्तर भारत में यही एक अफ़वाह नहीं थी। यह अफ़वाह भी ज़ोरों पर थी कि अंग्रेज़ सरकार ने हिंदुओं और मुसलमानों की जाति और धर्म को नष्ट करने के लिए एक भयानक साज़िश रच ली है। अफ़वाह फैलाने वालों का कहना था कि इसी मकसद को हासिल करने के लिए अंग्रेज़ों ने बाज़ार में मिलने वाले आटे में गाय और सुअर की हड्डियों का चूरा मिलवा दिया है। शहरों और छावनियों में सिपाहियों और आम लोगों ने आटे को छूने से भी इनकार कर दिया। चारों तरफ़ इस आशय का भय और शक बना हुआ था कि अंग्रेज़ हिंदुस्तानियों को ईसाई बनाना चाहते हैं। यह बेचैनी बहुत तेज़ी से फैली। ब्रिटिश अफ़सरों ने लोगों को अपनी बात का यकीन दिलाने का भरसक प्रयास किया लेकिन नाकामयाब रहे। इन्हीं बेचैनियों ने लोगों को अगला कदम उठाने के लिए झिंझोड़ा। किसी बड़ी कार्रवाई के आह्वान को इस भविष्यवाणी से और बल मिला कि प्लासी की जंग के 100 साल पूरा होते ही 23 जून 1857 को अंग्रेज़ी राज ख़त्म हो जाएगा।

बात सिर्फ़ अफ़वाहों तक ही सीमित नहीं थी। उत्तर भारत के विभिन्न भागों से गाँव-गाँव में चपातियाँ बँटने की भी रिपोर्टें आ रही थीं। बताते हैं कि रात में एक आदमी आकर गाँव के चौकीदार को एक चपाती तथा पाँच और चपातियाँ बनाकर अगले गाँवों में पहुँचाने का निर्देश दे जाता था। और यह सिलसिला यूँ ही चलता जाता था। चपातियाँ बाँटने का मतलब और मक़सद न उस समय स्पष्ट था और न आज स्पष्ट है। लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि लोग इसे किसी आने वाली उथल-पुथल का संकेत मान रहे थे।

1.5 लोग अफ़वाहों में विश्वास क्यों कर रहे थे?

इतिहास में अफ़वाहों और भविष्यवाणियों की ताकत को सिर्फ़ इस आधार पर नहीं समझा जा सकता कि वे वाकई में सच थीं या नहीं। हमें देखना यह चाहिए कि जो उन पर यकीन कर रहे थे उनकी मानसिकता के बारे में इनसे क्या पता चलता है; ये अफ़वाहें और भविष्यवाणियाँ उनके भय, उनकी आशंकाओं, उनके विश्वासों और प्रतिबद्धताओं के बारे में क्या बताती हैं। अफ़वाह तभी फैलती है जब उसमें लोगों के ज़हन में गहरे दबे डर और संदेह की अनुगूँज सुनाई देती है।

अगर 1857 की इन अफ़वाहों को 1820 के दशक से अंग्रेज़ों द्वारा अपनाई जा रही नीतियों के संदर्भ में देखा जाए तो उनका मतलब ज़्यादा आसानी से समझा जा सकता है। जैसा कि आपको मालूम होगा, गवर्नर जनरल लॉर्ड विलियम बेंटिंक के नेतृत्व में उसी समय से ब्रिटिश सरकार पश्चिमी शिक्षा, पश्चिमी विचारों और पश्चिमी संस्थानों के ज़रिए भारतीय समाज को "सुधारने" के लिए खास तरह की नीतियाँ लागू कर रही थी। भारतीय समाज के कुछ तबकों की सहायता से उन्होंने अंग्रेज़ी माध्यम के स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय स्थापित किए थे जिनमें पश्चिमी विज्ञान और उदार कलाओं (Liberal Arts) के बारे में पढ़ाया जाता था। अंग्रेज़ों ने सती प्रथा को ख़त्म करने (1829) और हिंदू विधवा विवाह को वैधता देने के लिए क़ानून बनाए थे।

शासकीय दुर्बलता और दत्तकता को अवैध घोषित कर देने जैसे बहानों के ज़रिए अंग्रेज़ों ने न केवल अवध बल्कि झाँसी और सतारा जैसी बहुत सारी दूसरी रियासतों को भी क़ब्ज़े में ले लिया था। जैसे ही ऐसी कोई रियासत या इलाका उनके क़ब्ज़े में आता था, वहाँ अंग्रेज़ अपने ढंग की शासन व्यवस्था, अपने क़ानून, भूमि विवादों के निपटारे की अपनी पद्धति और भूराजस्व वसूली की अपनी व्यवस्था लागू कर देते थे। उत्तर भारत के लोगों पर इन सब कार्रवाइयों का गहरा असर हुआ।

लोगों को लगता था कि वे अब तक जिन चीज़ों की क़द्र करते थे, जिनको पवित्र मानते थे – चाहे राजे-रजवाड़े हों, सामाजिक-धार्मिक रीति-रिवाज हों या भूस्वामित्व, लगान अदायगी की प्रणाली हो – उन सबको ख़त्म करके एक ऐसी व्यवस्था लागू की जा रही थी जो ज़्यादा हृदयहीन, परायी और दमनकारी थी।

चर्चा कीजिए...

इस भाग को एक बार और पढ़िए तथा विद्रोह के दौरान नेता कैसे उभरते थे, इस बारे में समानताओं और भिन्नताओं की व्याख्या कीजिए। किन्हीं दो नेताओं के बारे में बताइए कि आम लोग उनकी तरफ़ क्यों आकर्षित हो जाते थे।

इस सोच को ईसाई प्रचारकों की गतिविधियों से भी बल मिल रहा था। ऐसे अनिश्चित हालात में अफ़वाहें रातोंरात फैलने लगती थीं।

सन 1857 के विद्रोह के आधार का विस्तार से पता लगाने के लिए आइए अवध का ज़रा नज़दीकी से अध्ययन कीजिए। अवध 1857 के इस भव्य नाटक का बड़ा केंद्र था।

2. अवध में विद्रोह

2.1 "ये गिलास फल (Cherry) एक दिन हमारे ही मुँह में आकर गिरेगा।"

1851 में गवर्नर जनरल लॉर्ड डलहौज़ी ने अवध की रियासत के बारे में कहा था कि "ये गिलास फल एक दिन हमारे ही मुँह में आकर गिरेगा।" पाँच साल बाद, 1856 में इस रियासत को औपचारिक रूप से ब्रिटिश साम्राज्य का अंग घोषित कर दिया गया।

रेज़ीडेंट गवर्नर जनरल के प्रतिनिधि को कहा जाता था। उसे ऐसे राज्य में तैनात किया जाता था जो अंग्रेज़ों के प्रत्यक्ष शासन के अंतर्गत नहीं था।

रियासत पर क़ब्ज़े का यह सिलसिला ज़रा लंबा चला। 1801 से अवध में सहायक संधि थोप दी गई थी। इस संधि में शर्त थी कि नवाब अपनी सेना ख़त्म कर दे, रियासत में अंग्रेज़ टुकड़ियों की तैनाती की इजाज़त दे और दरबार में मौजूद ब्रिटिश रेज़ीडेंट की सलाह पर काम करे। अपनी सैनिक ताक़त से वंचित हो जाने के बाद नवाब अपनी रियासत में क़ानून-व्यवस्था बनाए रखने के लिए दिनोदिन अंग्रेज़ों पर निर्भर होता जा रहा था। अब विद्रोही मुखियाओं और ताल्लुक़दारों पर उसका कोई नियंत्रण नहीं था।

अवध पर क़ब्ज़े में अंग्रेज़ों की दिलचस्पी बढ़ती जा रही थी। उन्हें लगता था कि वहाँ की ज़मीन नील और कपास की खेती के लिए मुफ़ीद है और इस इलाक़े को उत्तरी भारत के एक बड़े बाज़ार के रूप में विकसित किया जा सकता है। 1850 के दशक की शुरुआत तक वे देश के ज़्यादातर बड़े हिस्सों पर जीत हासिल कर चुके थे। मराठा भूमि, दोआब, कर्नाटक, पंजाब और बंगाल, सब अंग्रेज़ों की झोली में थे। तक़रीबन एक सदी पहले बंगाल पर जीत के साथ शुरू हुई क्षेत्रीय विस्तार की यह प्रक्रिया 1856 में अवध के अधिग्रहण के साथ मुकम्मल हो जाने वाली थी।

सहायक संधि

सहायक संधि लॉर्ड वेलेज़्ली द्वारा 1798 में तैयार की गई एक व्यवस्था थी। अंग्रेज़ों के साथ यह संधि करने वालों को कुछ शर्तें माननी पड़ती थीं। मसलन :

(क) अंग्रेज़ अपने सहयोगी की बाहरी और आंतरिक चुनौतियों से रक्षा करेंगे;

(ख) सहयोगी पक्ष के भूक्षेत्र में एक ब्रिटिश सैनिक टुकड़ी तैनात रहेगी;

(ग) सहयोगी पक्ष को इस टुकड़ी के रख-रखाव की व्यवस्था करनी होगी; तथा

(घ) सहयोगी पक्ष न तो किसी और शासक के साथ संधि कर सकेगा और न ही अंग्रेज़ों की अनुमति के बिना किसी युद्ध में हिस्सा लेगा।

2.2 "देह से जान जा चुकी थी।"

लॉर्ड डलहौज़ी द्वारा किए गए इस अधिग्रहण से तमाम इलाक़ों और रियासतों में गहरा असंतोष था। लेकिन इतना ग़ुस्सा कहीं नहीं था जैसा उत्तर भारत की शान कहे जाने वाले अवध की रियासत में था। यहाँ के नवाब वाजिद अली शाह को यह कहते हुए गद्दी से हटा कर कलकत्ता निष्कासित कर दिया गया था कि वह अच्छी तरह शासन नहीं चला रहे थे। ब्रिटिश सरकार ने यह निराधार निष्कर्ष भी निकाल लिया कि वाजिद

रेखाचित्र
पैमाना नहीं दिया गया है।

मानचित्र 1
1857 में भारतीय उपमहाद्वीप।

अली शाह लोकप्रिय नहीं थे। मगर सच यह है कि लोग उन्हें दिल से चाहते थे। जब वे अपने प्यारे लखनऊ से विदा ले रहे थे तो बहुत सारे लोग विलाप करते हुए कानपुर तक उनके पीछे गए थे।

नवाब के निष्कासन से पैदा हुए दुख और अपमान के इस व्यापक अहसास को उस समय के बहुत सारे प्रेक्षकों ने दर्ज किया है। एक ने लिखा था : "देह से जान जा चुकी थी। शहर की काया बेजान थी...। कोई सड़क, कोई बाज़ार और घर ऐसा न था जहाँ से जान-ए-आलम से बिछड़ने पर विलाप का शोर न गूँज रहा हो।" एक लोक गीत में इस बात पर शोक व्यक्त किया गया कि *"अंगरेज बहादुर आइन, मुल्क लई लीन्हों।"*

इस भावनात्मक उथल-पुथल को भौतिक क्षति के अहसास से और बल मिला। नवाब को हटाए जाने से दरबार और उसकी संस्कृति भी ख़त्म हो गई। संगीतकारों, नर्तकों, कवियों, कारीगरों, बावर्चियों, नौकरों, सरकारी कर्मचारियों और बहुत सारे लोगों की रोज़ी-रोटी जाती रही।

स्रोत 3

नवाब साहब जा चुके हैं

एक और गीत में ऐसे शासक की दुर्दशा पर विलाप किया जा रहा है जिसे मजबूरन अपनी मातृभूमि छोड़नी पड़ी :

अभिजात और किसान, सब रो रहे थे।

और सारा आलम रोता-चिल्लाता था।

हाय! जान-ए-आलम देस से विदा लेकर परदेस चले गए हैं।

➲ इस पूरे भाग को पढ़ें और चर्चा करें कि लोग वाजिद अली शाह की विदाई पर इतने दुखी क्यों थे।

चित्र 11.6
अवध का एक ज़मींदार, 1880

2.3 फ़िरंगी राज का आना और एक दुनिया का ख़ात्मा

अवध में विभिन्न प्रकार की पीड़ाओं ने राजकुमारों, ताल्लुक़दारों, किसानों और सिपाहियों को एक-दूसरे से जोड़ दिया था। वे सभी फिरंगी राज के आगमन को विभिन्न अर्थों में एक दुनिया की समाप्ति के रूप में देखने लगे थे। वे चीज़ें बिखर रही थीं जो लोगों के लिए बहुमूल्य थीं, जिनको वे प्यार करते थे। 1857 के विद्रोह में तमाम भावनाएँ और मुद्दे, परंपराएँ और निष्ठाएँ अभिव्यक्त हो रही थीं। बाकी जगहों के मुकाबले अवध में यह विद्रोह एक विदेशी शासन के ख़िलाफ़ लोक-प्रतिरोध की अभिव्यक्ति बन गया था।

अवध के अधिग्रहण से सिर्फ़ नवाब की ही गद्दी नहीं छिनी थी। इसने इलाके के ताल्लुक़दारों को भी लाचार कर दिया था। अवध के समूचे देहात में ताल्लुक़दारों की जागीरें और क़िले बिखरे हुए थे। ये लोग पीढ़ियों से अपने इलाक़े में ज़मीन और सत्ता पर नियंत्रण रखते आए थे। अंग्रेज़ों के आने से पहले ताल्लुक़दारों के पास हथियारबंद सिपाही होते थे। उनके अपने क़िले थे। अगर वे नवाब की संप्रभुता को स्वीकार कर लें और अपने ताल्लुक़दार का राजस्व चुकाते रहें तो उनके पास काफ़ी स्वायत्तता भी होती थी। कुछ बड़े ताल्लुक़दारों के पास तो 12,000 तक पैदल सिपाही होते थे। छोटे-मोटे ताल्लुक़दारों के पास भी 200 सिपाहियों की टुकड़ी तो होती ही थी। अंग्रेज़ इन ताल्लुक़दारों की सत्ता को बरदाश्त करने के लिए कतई तैयार नहीं थे। अधिग्रहण के फौरन बाद ताल्लुक़दारों की सेनाएँ भंग कर दी गईं। उनके दुर्ग ध्वस्त कर दिए गए।

ब्रिटिश भूराजस्व नीति ने ताल्लुक़दारों की हैसियत व सत्ता को और चोट पहुँचाई। अधिग्रहण के बाद 1856 में एकमुश्त बंदोबस्त के नाम से ब्रिटिश भूराजस्व व्यवस्था लागू कर दी गई। यह बंदोबस्त इस मान्यता पर आधारित था कि ताल्लुक़दार बिचौलिए थे जिनके पास ज़मीन का मालिकाना नहीं था। उन्होंने बल और धोखाधड़ी के ज़रिए अपना प्रभुत्व स्थापित किया हुआ था। एकमुश्त बंदोबस्त में ताल्लुक़दारों को उनकी ज़मीनों से बेदखल किया जाने लगा। आंकड़ों से पता चलता है कि अंग्रेज़ों के आने से पहले ताल्लुक़दारों के पास अवध के 67 प्रतिशत गाँव थे। एकमुश्त बंदोबस्त के लागू होने के बाद यह संख्या घटकर 38 प्रतिशत रह गई। दक्षिण अवध के ताल्लुक़दारों को सबसे बुरी मार पड़ी। कुछ के तो आधे से ज़्यादा गाँव हाथ से जाते रहे।

ब्रिटिश भूराजस्व अधिकारियों का मानना था कि ताल्लुक़दारों को हटाकर वे ज़मीन असली मालिकों के हाथ में सौंप देंगे जिससे किसानों के शोषण में कमी आएगी और राजस्व वसूली में इजाफ़ा होगा। वास्तव में ऐसा नहीं हुआ। भूराजस्व वसूली में तो इजाफ़ा हुआ लेकिन किसानों के बोझ में कमी नहीं आई। अधिकारियों को जल्दी ही समझ में आने

लगा कि अवध के बहुत सारे इलाक़े का मूल्य निर्धारण बहुत बढ़ा-चढ़ा कर किया गया था। कुछ स्थानों पर तो राजस्व माँग में 30 से 70 प्रतिशत तक इज़ाफ़ा हो गया था। यानी न तो ताल्लुक़दारों के पास और न ही काश्तकारों के पास इस अधिग्रहण पर ख़ुशी जताने का कोई कारण था।

ताल्लुक़दारों की सत्ता छिनने का नतीजा यह हुआ कि एक पूरी सामाजिक व्यवस्था भंग हो गई। निष्ठा और संरक्षण के जिन बंधनों से किसान ताल्लुक़दारों के साथ बँधे हुए थे वे अस्त-व्यस्त हो गए। अंग्रेज़ों से पहले ताल्लुक़दार ही जनता का उत्पीड़न करते थे लेकिन जनता की नज़र में बहुत सारे ताल्लुक़दार दयालु अभिभावक की छवि भी रखते थे। वे किसानों से तरह-तरह के मद में पैसा तो वसूलते थे लेकिन बुरे वक़्त में किसानों की मदद भी करते थे। अब अंग्रेज़ों के राज में किसान मनमाने राजस्व आकलन और गैर-लचीली राजस्व व्यवस्था के तहत बुरी तरह पिसने लगे थे। अब इस बात की कोई गारंटी नहीं थी कि कठिन वक़्त में या फ़सल खराब हो जाने पर सरकार राजस्व माँग में कोई कमी करेगी या वसूली को कुछ समय के लिए टाल दिया जाएगा। ना ही किसानों को इस बात की उम्मीद थी कि तीज-त्यौहारों पर कोई क़र्जा और मदद मिल पाएगी जो पहले ताल्लुक़दारों से मिल जाती थी।

अवध जैसे जिन इलाकों में 1857 के दौरान प्रतिरोध बेहद सघन और लंबा चला था वहाँ लड़ाई की बागडोर असल में ताल्लुक़दारों और उनके किसानों के ही हाथों में थी। बहुत सारे ताल्लुक़दार अवध के नवाब के प्रति निष्ठा रखते थे इसलिए वे अंग्रेज़ों से लोहा लेने के लिए लखनऊ जाकर बेगम हज़रत महल (नवाब की पत्नी) के खेमे में शामिल हो गए। उनमें से कुछ तो बेगम की पराजय के बाद भी उनके साथ डटे रहे।

किसानों का असंतोष अब फ़ौजी बैरकों में भी पहुँचने लगा था क्योंकि बहुत सारे किसान अवध के गाँवों से ही भर्ती किए गए थे। दशकों से सिपाही कम वेतन और वक़्त पर छुट्टी न मिलने के कारण असंतुष्ट थे। 1850 के दशक तक आते-आते उनके असंतोष के कई नए कारण पैदा हो चुके थे।

1857 के जनविद्रोह से पहले के सालों में सिपाहियों के अपने गोरे अफ़सरों के साथ रिश्ते काफ़ी बदल चुके थे। 1820 के दशक में अंग्रेज़ अफ़सर सिपाहियों के साथ दोस्ताना ताल्लुक़ात रखने पर ख़ासा ज़ोर देते थे। वे उनकी मौजमस्ती में शामिल होते थे, उनके साथ मल्ल-युद्ध करते थे, उनके साथ तलवारबाज़ी करते थे और उनके साथ शिकार पर जाते थे। उनमें से बहुत सारे तो बख़ूबी हिंदुस्तानी बोलना जानते थे और यहाँ के रीति-रिवाजों व संस्कृति से वाकिफ़ थे। उनमें

स्रोत 4

ताल्लुक़दारों की सोच

ताल्लुक़दारों के रवैये को रायबरेली के पास स्थित कालाकंकर के राजा हनवन्त सिंह ने सबसे अच्छी तरह व्यक्त किया था। विद्रोह के दौरान हनवन्त सिंह ने एक अंग्रेज़ अफ़सर को पनाह दी और उसे सुरक्षित स्थान तक पहुँचाया था। उस अफ़सर से आख़िरी मुलाकात में हनवन्त सिंह ने कहा कि –

> साहिब, आपके मुल्क के लोग हमारे देश में आए और उन्होंने हमारे राजाओं को खदेड़ दिया। आप अफ़सरों को भेज कर जिले-जिले में जागीरों के मालिकाने की जाँच करवाते हैं। एक ही झटके में आपने मेरे पुरखों की ज़मीन मुझसे छीन ली। मैं चुप रहा। फिर अचानक आपका बुरा वक़्त शुरू हो गया। यहाँ के लोग आपके ख़िलाफ़ उठ खड़े हुए। तब आप मेरे पास आए, जिसे आपने बर्बाद किया था। मैंने आप की जान बचाई है। लेकिन अब,– अब मैं अपने सिपाहियों को लेकर लखनऊ जा रहा हूँ ताकि आपको देश से खदेड़ सकूँ।

➲ इस अंश से आपको ताल्लुक़दारों के रवैये के बारे में क्या पता चल रहा है? 'यहाँ के लोगों' से हनवन्त सिंह का क्या आशय था? उन्होंने लोगों के ग़ुस्से की क्या वजह बताई?

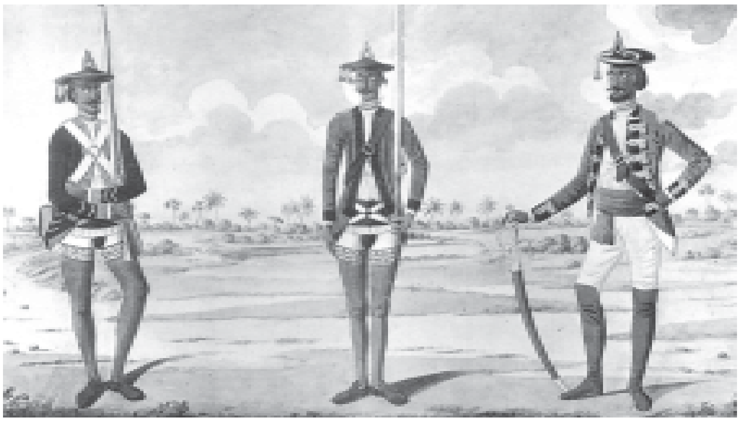

चित्र 11.7
यूरोपीय क़िस्म की वर्दी पहने बंगाल के सिपाही। यहाँ कलाकार सिपाहियों की वर्दी का मज़ाक उड़ा रहा है। इन तस्वीरों के ज़रिए शायद यह जताने का प्रयास किया जा रहा है कि पश्चिमी पोशाक पहन कर भी हिंदुस्तानी सुंदर नहीं दिख सकते।

➲ चर्चा कीजिए...

पता लगाएँ कि क्या आपके राज्य के लोगों ने 1857 के विद्रोह में हिस्सा लिया था? अगर हाँ, तो उन्होंने ऐसा क्यों किया होगा? अगर नहीं, तो उसकी व्याख्या कीजिए।

अफ़सर की कड़क और अभिवावक का स्नेह, दोनों निहित थे।

1840 के दशक में स्थिति बदलने लगी। अफ़सरों में श्रेष्ठता का भाव पैदा होने लगा और वे सिपाहियों को कमतर नस्ल का मानने लगे। वे उनकी भावनाओं की ज़रा-सी भी फ़िक्र नहीं करते थे। गाली-गलौज और शारीरिक हिंसा सामान्य बात बन गई। सिपाहियों व अफ़सरों के बीच फ़ासला बढ़ता गया। भरोसे की जगह संदेह ने ले ली। चिकनाई युक्त कारतूसों की घटना इसका एक बढ़िया उदाहरण थी।

यह भी याद रखना महत्त्वपूर्ण है कि उत्तर भारत में सिपाहियों और ग्रामीण जगत के बीच गहरे संबंध थे। बंगाल आर्मी के सिपाहियों में से बहुत सारे अवध और पूर्वी उत्तर प्रदेश के गाँवों से भर्ती होकर आए थे। उनमें से बहुत सारे ब्राह्मण या "ऊँची जाति" के थे। बल्कि अवध को तो "बंगाल आर्मी की पौधशाला" कहा जाता था। सिपाहियों के परिवार अपने इर्द-गिर्द जिन बदलावों को देख रहे थे और उन्हें जो ख़तरे दिखाई दे रहे थे वे जल्दी ही सिपाही लाइनों में भी दिखाई देने लगे। दूसरी ओर, कारतूसों के बारे में सिपाहियों का भय, छुट्टियों के बारे में उनकी शिकायतें, बढ़ते दुर्व्यवहार और नस्ली गाली-गलौज के प्रति बढ़ता असंतोष गाँवों में भी प्रतिबिंबित होने लगा था।

सिपाहियों और ग्रामीण जगत के बीच मौजूद इन संबंधों से जनविद्रोह के रूप-रंग पर गहरा असर पड़ा। जब सिपाही अपने अफ़सरों की अवज्ञा करते थे और हथियार उठाते थे तो फ़ौरन ही गाँवों में उनके भाई-बिरादर भी उनके साथ आ जुटते थे। हर कहीं किसान शहरों में पहुँचकर सिपाहियों और शहर के आम लोगों के साथ जुड़ कर विद्रोह के सामूहिक कृत्य में शामिल हो रहे थे।

3. विद्रोही क्या चाहते थे?

बतौर विजेता कठिनाइयों, चुनौतियों और बहादुरी के बारे में अंग्रेज़ों की अपनी राय थी। वे विद्रोहियों को अहसानफ़रामोश और बर्बर लोगों का झुंड मानते थे। विद्रोहियों को कुचलने का एक मतलब यह भी था कि उनकी आवाज़ को दबा दिया जाए। कुछ विद्रोहियों को ही इस घटनाक्रम के बारे में अपनी बात दर्ज करने का मौका मिला। यूँ भी विद्रोहियों में ज़्यादातर सिपाही और आम लोग थे जो पढ़े-लिखे नहीं थे। इस प्रकार, अपने विचारों का प्रसार करने और लोगों को विद्रोह में शामिल करने के लिए जारी की गई कुछ घोषणाओं व इश्तहारों के सिवाय हमारे पास ऐसी ज़्यादा चीज़ें नहीं हैं जिनकी बिना पर हम विद्रोहियों के नज़रिए को समझ सकें। इसीलिए,

1857 में जो कुछ हुआ, उसे रचने के लिए इतिहासकारों की कोशिशों को बहुत हद तक, और मजबूरन, अंग्रेज़ों के दस्तावेज़ों पर निर्भर रहना पड़ता है। विडंबना यह है कि इन स्रोतों से अंग्रेज़ अफ़सरों की सोच का तो पता चलता है लेकिन इस बारे में ज़्यादा सुराग़ नहीं मिल पाता कि विद्रोही क्या चाहते थे।

3.1 एकता की कल्पना

1857 में विद्रोहियों द्वारा जारी की गई घोषणाओं में, जाति और धर्म का भेद किए बिना, समाज के सभी तबकों का आह्वान किया जाता था। बहुत सारी घोषणाएँ मुस्लिम राजकुमारों या नवाबों की तरफ़ से या उनके नाम पर जारी की गई थीं। परंतु उनमें भी हिंदुओं की भावनाओं का ख़याल रखा जाता था। इस विद्रोह को एक ऐसे युद्ध के रूप में पेश किया जा रहा था जिसमें हिंदुओं और मुसलमानों, दोनों का नफ़ा-नुकसान बराबर था। इश्तहारों में अंग्रेज़ों से पहले के हिंदू-मुस्लिम अतीत की ओर संकेत किया जाता था और मुग़ल साम्राज्य के तहत विभिन्न समुदायों के सहअस्तित्व का गौरवगान किया जाता था। बहादुर शाह के नाम से जारी की गई घोषणा में मुहम्मद और महावीर, दोनों की दुहाई देते हुए जनता से इस लड़ाई में शामिल होने का आह्वान किया गया। दिलचस्प बात यह है कि आंदोलन

स्रोत 5

आज़मगढ़ घोषणा, 25 अगस्त 1857

विद्रोही क्या चाहते थे, इसके बारे में हमारी जानकारी का यह एक मुख्य स्रोत है :

> यह सर्वविदित है कि इस युग में हिंदुस्तान के लोग, हिंदू और मुस्लिम, दोनों ही अधर्मी और षड्यंत्रकारी अंग्रेज़ों की निरकुंशता व उत्पीड़न से त्रस्त हैं। इसलिए देश के सभी धनवान लोगों को, खासतौर से जिनका मुस्लिम शाही परिवारों से ताल्लुक़ रहा है, और जिन्हें लोगों का धर्मरक्षक और स्वामी माना जाता है, अपने जीवन और संपत्ति को जनता की कुशलक्षेम के लिए होम कर देना चाहिए...।
>
> अपने धर्म की रक्षा के लिए अरसा पहले अपने घर-बार छोड़ चुके और भारत से अंग्रेज़ों को उखाड़ फेंकने के लिए पूरा ज़ोर लगा रहे बहुत सारे हिंदू और मुसलमान मुखिया मेरे पास आए और उन्होंने इस भारतीय धर्म युद्ध में हिस्सा लिया। मुझे पूरी उम्मीद है कि जल्दी ही मुझे पश्चिम से भी मदद मिलेगी। इसलिए जनता की जानकारी के लिए कई भागों का यह इश्तहार जारी किया जा रहा है। यह सबका दायित्व है कि इसको ग़ौर से पढ़ें और इसका पालन करें। इस साझा उद्देश्य में जो लोग अपना योगदान देना चाहते हैं, लेकिन जिनके पास अपनी सेवाएँ देने के साधन नहीं हैं, उन्हें मेरी तरफ़ से दैनिक भोजन दिया जाएगा; और सबको मालूम हो कि हिंदू और मुस्लिम, दोनों तरह के प्राचीन ग्रंथों में, चमत्कार करने वालों के लेखन और भविष्यवक्ताओं में, पंडितों की गणनाओं में... सबमें यह सहमति दिखायी देती कि अब भारत में या कहीं भी अंग्रेज़ों के पैर टिक नहीं पाएँगे। इसलिए यह सबका फ़र्ज़ है कि वे अंग्रेज़ों का वर्चस्व बने रहने की सारी उम्मीद छोड़ दें, मेरा साथ दें और साझे हित में काम करते हुए अपने व्यक्तिगत परिश्रम से बादशाही सम्मान के हकदार बनें और अपने-अपने लक्ष्य प्राप्त करें। अन्यथा, अगर यह स्वर्णिम अवसर हमारे हाथ से चला गया तो हमें अपनी इस मूर्खता पर पश्चाताप करना पड़ेगा...।

भाग-1 – ज़मींदारों के बारे में : ज़ाहिर है कि ज़मींदारी बंदोबस्त तय करने में अंग्रेज़ी सरकार ने बेहिसाब *जमा* (भूराजस्व) थोप दिया है और कई ज़मींदारों को बेइज़्ज़त व बरबाद किया है। बकाया लगान की वजह से उनकी जागीरें नीलाम कर दी गई हैं। हद तो ये है कि एक आम रैयत, किसी ज़नाना नौकर या किसी ग़ुलाम की ओर से दाखिल किए गए मुक़दमे पर भी बाइज़्ज़त ज़मींदारों को अदालत में घसीटा जा रहा है, गिरफ़्तार किया जा रहा है, कैदखाने में डाला जा रहा है और बेइज़्ज़त किया जा रहा है। ज़मींदारियों के बारे में दायर किए गए मुक़दमों में भारी ख़र्चे की स्टाम्प और दीवानी अदालतों के गैर-ज़रूरी ख़र्चों का मकसद प्रतिवादियों को दरिद्र करना रहा है। ज़मींदारों के ख़ज़ाने को स्कूलों, अस्पतालों, सड़कों आदि के लिए चन्दे के नाम पर हर साल खाली किया जा रहा है। इस तरह की वसूलियों के लिए बादशाही सरकार में कोई जगह नहीं होगी : *जमा* हलका रहेगा, ज़मींदारों के हितों की रक्षा की जाएगी और हर ज़मींदार को अपनी ज़मींदारी में अपने ढंग से शासन करने का अधिकार होगा...

भाग 2 – व्यापारियों के बारें में : इस अधर्मी और षड्यंत्रकारी ब्रिटिश सरकार ने नील, कपड़े, जहाज व्यवसाय जैसी तमाम बेहतरीन और बहुमूल्य चीज़ों के व्यापार पर एकाधिकार स्थापित कर लिया है। अब छोटी-मोटी चीज़ों का व्यापार ही लोगों के लिए रह गया है...। डाक खर्चे, नाका वसूली और स्कूलों के लिए चन्दे के नाम पर व्यापारियों के मुनाफ़े में से सेंध मारी जा रही है। इन तमाम रियायतों के बावजूद व्यापारियों को दो कौड़ी के आदमी की शिकायत पर गिरफ़्तार किया जा सकता है, बेइज़्ज़त किया जा सकता है। जब बादशाही सरकार बनेगी तो इन सारे फ़रेबी तौर-तरीकों को ख़त्म कर दिया जाएगा और ज़मीन व पानी, दोनों रास्तों से होने वाला हर चीज़ का व्यापार भारत के देसी व्यापारियों के लिए खोल दिया जाएगा...। इसलिए यह हर व्यापारी की जिम्मेदारी है कि वह इस जंग में हिस्सा ले और बादशाही सरकार की हर इनसानी और माली मदद करे...।

भाग 3-सरकारी कर्मचारियों के बारे में : अब यह राज़ की बात नहीं है कि अंग्रेज़ सरकार के तहत प्रशासनिक और सैनिक सेवाओं में भर्ती होने वाले भारतीय लोगों को इज़्ज़त नहीं मिलती, उनकी तनख़्वाह कम होती है और उनके पास कोई ताकत नहीं होती। दोनों महकमों में प्रतिष्ठा और पैसे वाले सारे पद सिर्फ़ अंग्रेज़ों को मिलते हैं. ..। इसलिए ब्रिटिश सेवा में काम करने वाले तमाम भारतीयों को अपने मज़हब और हित पर ध्यान देना चाहिए और अंग्रेज़ों के प्रति अपनी वफ़ादारी छोड़कर बादशाही सरकार का साथ देना चाहिए। उन्हें फ़िलहाल 200 और 300 रुपये प्रतिमाह की तनख़्वाह मिलेगी और भविष्य में ऊँचे ओहदों की उम्मीद रखें...।

भाग 4- कारीगरों के बारे में : इसमें कोई शक नहीं कि इंग्लैंड में बनी चीज़ों को ला-लाकर यूरोपियों ने हमारे बुनकरों, सूती वस्त्र बनाने वालों, बढ़इयों, लोहारों और मोचियों आदि को बेरोज़गार कर दिया है, उनके काम-धंधों पर इस तरह क़ब्ज़ा जमा लिया है कि देसी कारीगरों की हर श्रेणी भिखमंगों की हालत में पहुँच गई है। बादशाही सरकार में देसी कारीगरों को राजाओं और अमीरों की सेवा में तैनात किया जाएगा। इससे नि:संदेह उनकी उन्नति होगी। इसलिए इन करीगरों को अंग्रेज़ों की सेवा छोड़ देनी चाहिए।

भाग 5 – पंडितों, फ़कीरों और अन्य ज्ञानी व्यक्तियों के बारे में : पंडित और फ़कीर क्रमश: हिंदू और मुस्लिम धर्मों के अभिभावक हैं। यूरोपीय दोनो धर्मों के शत्रु हैं और क्योंकि फिलहाल धर्म के कारण ही अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ एक युद्ध छिड़ा हुआ है इसलिए पंडितों और फ़कीरों का फ़र्ज़ है कि वे ख़ुद को मेरे सामने पेश करें और इस पवित्र युद्ध में अपना हिस्सा निभाएँ...।

➲ इस घोषणा में ब्रिटिश शासन के ख़िलाफ़ कौन से मुद्दे उठाए गए हैं। प्रत्येक तबके के बारे में दिए गए भाग को ध्यान से पढ़िए। घोषणा की भाषा पर ध्यान दीजिए और देखिए कि उसमें कौन-सी भावनाओं पर ज़ोर दिया जा रहा है।

स्रोत 6

सिपाही क्या सोचते थे

विद्रोही सिपाहियों की एक अर्ज़ी जो बच गई :

एक सदी पहले अंग्रेज़ हिंदुस्तान आए और धीरे-धीरे यहाँ फौजी टुकड़ियाँ बनाने लगे। इसके बाद वे हर राज्य के मालिक बन बैठे। हमारे पुरखों ने सदा उनकी सेवा की है और हम भी उनकी नौकरी में आए...। ईश्वर की कृपा से और हमारी सहायता से अंग्रेज़ों ने जो चाहा वो इलाका जीत लिया। उनके लिए हमारे जैसे हज़ारों हिंदुस्तानी जवानों को अपनी कुर्बानी देनी पड़ी लेकिन न हमने कभी पैर पीछे खींचें और न कोई बहाना बनाया और न ही कभी बग़ावत के रास्ते पर चले...।

लेकिन सन् 1857 में अंग्रेज़ों ने ये हुक्म जारी कर दिया कि अब सिपाहियों को इंग्लैंड से नए कारतूस और बंदूकें दी जाएँगी। नए कारतूसों में गाय और सुअर की चर्बी मिली हुई है और गेहूँ के आटे में हड्डियों का चूरा मिलाकर खिलाया जा रहा है। ये चीज़ें पैदल-सेना, घुड़सवारों और गोलअंदाज़ फौज की हर रेजीमेंट में पहुँचा दी गई हैं...।

उन्होने ये कारतूस थर्ड लाइट केवेलरी के सवारों (घुड़सवार सैनिक) को दिए और उन्हें दाँतो से खींचने के लिए कहा। सिपाहियों ने इस हुक्म का विरोध किया और कहा कि वे ऐसा कभी नहीं करेंगे क्योंकि अगर उन्होंने ऐसा किया तो उनका धर्म भ्रष्ट हो जाएगा...। इस पर अंग्रेज़ अफ़सरों ने तीन रेजीमेंटों के जवानों की परेड करवा दी। 1400 अंग्रेज़ सिपाही, यूरोपीय सैनिकों की दूसरी बटालियनें, और घुड़सवार गोलअंदाज़ फ़ौज को तैयार कर भारतीय सैनिकों को घेर लिया गया। हर पैदल रेजीमेंट के सामने छर्रों से भरी छह-छह तोपें तैनात कर दी गई और 84 नए सिपाहियों को गिरफ़्तार करके, बेड़ियाँ डालकर, जेल में बंद कर दिया गया। छावनी के सवारों को इसलिए जेल में डाला गया ताकि हम डर कर नए कारतूसों को दाँतों से खींचने लगें। इसी कारण हम और हमारे सारे सहोदर इकट्ठा होकर अपनी आस्था की रक्षा के लिए अंग्रेज़ों से लड़े...। हमें दो साल तक युद्ध जारी रखने पर मजबूर किया गया। धर्म व आस्था के सवाल पर हमारे साथ खड़े राजा और मुखिया अभी भी हमारे साथ हैं और उन्होंने भी सारी मुसीबतें झेली हैं। हम दो साल तक इसलिए लड़े ताकि हमारा अक़ायद (आस्था) और मज़हब दूषित न हों। अगर एक हिंदू या मुसलमान का धर्म ही नष्ट हो गया तो दुनिया में बचेगा क्या?

➲ इस अर्ज़ी में सैनिक विद्रोह के जो कारण बताए गए हैं उनकी तुलना ताल्लुक़दार द्वारा बताए गए कारणों (स्रोत 3) के साथ कीजिए।

में हिंदू और मुसलमानों के बीच खाई पैदा करने की अंग्रेज़ों द्वारा की गई कोशिशों के बावजूद ऐसा कोई फ़र्क़ नहीं दिखाई दिया। अंग्रेज़ शासन ने दिसंबर 1857 में पश्चिमी उत्तर प्रदेश स्थित बरेली के हिंदुओं को मुसलमानों के ख़िलाफ़ भड़काने के लिए 50,000 रुपये खर्च किए। उनकी यह कोशिश नाकामयाब रही।

3.2 उत्पीड़न के प्रतीकों के ख़िलाफ़

इन घोषणाओं में ब्रिटिश राज (जिसे विद्रोही फ़िरंगी राज कहते थे) से संबंधित हर चीज़ को पूरी तरह खारिज किया जा रहा था। देशी रियासतों पर क़ब्ज़े और समझौतों का उल्लंघन करने के लिए अंग्रेज़ों की निंदा की जाती थी। विद्रोही नेताओं का कहना था कि अंग्रेज़ों पर भरोसा नहीं किया जा सकता।

लोगों को इस बात पर गुस्सा था कि ब्रिटिश भूराजस्व व्यवस्था ने बड़े-छोटे भूस्वामियों को ज़मीन से बेदख़ल कर दिया था और विदेशी व्यापार ने दस्तकारों और बुनकरों को तबाह कर डाला था। ब्रिटिश शासन के हर पहलू पर निशाना साधा जाता था। फ़िरंगियों पर स्थापित और सुंदर जीवन-शैली को नष्ट करने का आरोप लगाया जाता था। विद्रोही अपनी उस दुनिया को दोबारा बहाल करना चाहते थे।

विद्रोही उद्‌घोषणाएँ इस व्यापक डर को व्यक्त करती थीं कि अंग्रेज़, हिंदुओं और मुसलमानों की जाति और धर्म को नष्ट करने पर तुले हैं और वे लोगों को ईसाई बनाना चाहते हैं। इसी डर की वजह से लोग चल रही अफ़वाहों पर भरोसा करने लगे। लोगों को प्रेरित किया गया की वे इकट्ठे मिलकर अपने रोज़गार, धर्म, इज़्ज़त और अस्मिता के लिए लड़ें। यह 'व्यापक सार्वजनिक भलाई' की लड़ाई होगी।

जैसा कि हम देख चुके हैं, बहुत सारे स्थानों पर अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ विद्रोह उन तमाम ताकतों के विरुद्ध हमले की शक्ल ले लेता था जिनको अंग्रेज़ों के हिमायती या जनता का उत्पीड़क समझा जाता था। कई दफ़ा विद्रोही शहर के संभ्रांत को जान-बूझकर बेइज़्ज़त करते थे। गाँवों में उन्होंने सूदखोरों के बहीखाते जला दिए और उनके घर तोड़-फोड़ डाले। इससे पता चलता है कि विद्रोही *तमाम* उत्पीड़कों के ख़िलाफ़ थे और परंपरागत सोपानों (ऊँच-नीच) को ख़त्म करना चाहते थे। इसमें हमें एक वैकल्पिक दृष्टि, संभवत: एक ज़्यादा समतापरक समाज की कल्पना दिखाई देती है। पर, यह सोच उनकी घोषणाओं में नहीं दिखाई देती। उनमें तो फ़िरंगी राज के ख़िलाफ़ तमाम सामाजिक समूहों को एकजुट करने का ही आह्वान किया जाता था।

3.3 वैकल्पिक सत्ता की तलाश

ब्रिटिश शासन ध्वस्त हो जाने के बाद दिल्ली, लखनऊ और कानपुर जैसे स्थानों पर विद्रोहियों ने एक प्रकार की सत्ता और शासन संरचना स्थापित करने का प्रयास किया। बेशक यह प्रयोग ज़्यादा समय तक नहीं चला लेकिन इन कोशिशों से पता चलता है कि विद्रोही नेता अठारहवीं सदी की पूर्व-ब्रिटिश दुनिया को पुनर्स्थापित करना चाहते थे। इन नेताओं ने पुरानी दरबारी संस्कृति का सहारा लिया। विभिन्न पदों पर नियुक्तियाँ की गईं। भूराजस्व वसूली और सैनिकों के वेतन के भुगतान का इंतज़ाम किया गया। लूटपाट बंद करने के लिए हुक्मनामे जारी किए गए। इसके साथ-साथ अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ युद्ध जारी रखने की योजनाएँ भी बनाई गईं। सेना की कमान शृंखला तय की गई। इन सारे प्रयासों में विद्रोही अठारहवीं सदी के मुग़ल जगत से ही प्रेरणा ले रहे थे – यह जगत उन तमाम चीज़ों का प्रतीक बन गया जो उनसे छिन चुकी थीं।

विद्रोहियों द्वारा स्थापित शासन संरचना का प्राथमिक उद्देश्य युद्ध की ज़रूरतों को पूरा करना था। लेकिन ज़्यादातर मामलों में ये संरचनाएँ

➲ चर्चा कीजिए...

आपकी राय में विद्रोहियों के नज़रिए को पुन:निर्मित करने में इतिहासकारों के सामने कौन-सी मुख्य समस्याएँ आती हैं?

अंग्रेज़ों की मार बरदाश्त नहीं कर पाई। अवध में अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ प्रतिरोध सबसे लंबा चला। वहाँ लखनऊ दरबार द्वारा जवाबी हमले की योजनाएँ बनाई जा रही थीं और 1857 के आखिर तथा 1858 के शुरुआती महीनों तक हुकुम की श्रेणियाँ वजूद में थीं।

4. दमन

1857 के बारे में हमारे पास जो भी विवरण मौजूद हैं उनसे यह साफ़ हो जाता है कि इस विद्रोह को कुचलना अंग्रेज़ों के लिए बहुत आसान साबित नहीं हुआ।

उत्तर भारत को दोबारा जीतने के लिए टुकड़ियों को रवाना करने से पहले अंग्रेज़ों ने उपद्रव शांत करने के लिए फ़ौजियों की आसानी के लिए कई क़ानून पारित कर दिए थे। मई और जून 1857 में पारित किए गए कई क़ानूनों के ज़रिए न केवल समूचे उत्तर भारत में मार्शल लॉ लागू कर दिया गया बल्कि फ़ौजी अफ़सरों और यहाँ तक कि आम अंग्रेज़ों को भी ऐसे हिंदुस्तानियों पर मुक़दमा चलाने और उनको सज़ा देने का अधिकार दे दिया गया जिन पर विद्रोह में शामिल होने का शक था। कहने का मतलब यह है कि क़ानून और मुकदमें की सामान्य प्रक्रिया रद्द कर दी गई थी और यह स्पष्ट कर दिया गया था कि विद्रोह की केवल एक ही सज़ा हो सकती है – सज़ा-ए-मौत।

स्रोत 7

विद्रोही ग्रामीण

ग्रामीण अवध क्षेत्र से रिपोर्ट भेजने वाले एक अफ़सर ने लिखा :

> अवध के लोग उत्तर से जोड़ने वाली संचार लाइन पर ज़ोर बना रहे हैं...। अवध के लोग गाँव वाले हैं...। ये गाँव वाले यूरोपियों की पकड़ से बिलकुल बाहर हैं। पल में बिखर जाते हैं, पल में फिर जुट जाते हैं। शासकीय अधिकारियों का कहना है कि इन गाँव वालों की संख्या बहुत बड़ी है और उनके पास बाकायदा बंदूकें हैं।

➲ इस विवरण के अनुसार गाँव वालों से निपटने में अंग्रेज़ों को किन मुश्किलों का सामना करना पड़ा?

मानचित्र 2
यहाँ विद्रोह के महत्त्वपूर्ण केंद्र दिखाए गए हैं। विद्रोहियों पर ब्रिटिश हमलों के मार्गों को भी दर्शाया गया है।

इन नए विशेष क़ानूनों और ब्रिटेन से मँगाई गई नयी टुकड़ियों से लैस अंग्रेज़ सरकार ने विद्रोह को कुचलने का काम शुरू कर दिया। विद्रोहियों की तरह वे भी दिल्ली के सांकेतिक महत्त्व को बखूबी समझते थे। लिहाज़ा, उन्होंने दोतरफ़ा हमला बोल दिया। एक तरफ़ कलकत्ते से, दूसरी तरफ़ पंजाब से दिल्ली की तरफ़ कूच हुआ हालांकि पंजाब कमोबेश शांत था। दिल्ली को क़ब्ज़े में लेने की अंग्रेज़ों की कोशिश जून 1857 में बड़े पैमाने पर शुरू हुई लेकिन यह मुहिम सितंबर के आखिर में जाकर पूरी हो पाई। दोनों तरफ़ से जमकर हमले किए गए और दोनों पक्षों को भारी नुकसान उठाना पड़ा। इसकी एक वजह ये थी कि पूरे उत्तर भारत के विद्रोही राजधानी को बचाने के लिए दिल्ली में आ जमे थे।

चित्र 11.8
दिल्ली रिज पर स्थित एक मस्जिद, फ़ेलिस बिएतो द्वारा लिया गया चित्र, 1857-58.
1857 के बाद ब्रिटिश फ़ोटोग्राफ़रों ने तबाही और ध्वंस की असंख्य तसवीरें उतारी थीं।

गंगा के मैदान में भी अंग्रेज़ों की बढ़त का सिलसिला धीमा रहा। अंग्रेज़ टुकड़ियों को हर इलाक़ा गाँव-दर-गाँव जीतना था। आम देहाती जनता और आस-पास के लोग उनके ख़िलाफ़ थे। जैसे ही उन्होंने अपनी उपद्रव-विरोधी कार्रवाई शुरू की, अंग्रेज़ों को अहसास हो गया कि उनका सामना सिर्फ़ सैनिक विद्रोह से नहीं है, वे ऐसे आंदोलन से जूझ रहे हैं जिसके पीछे बेहिसाब जन-समर्थन मौजूद है। उदाहरण के लिए, अवध में फॉरसिथ नाम के एक अंग्रेज़ अफ़सर का अनुमान था कि कम से कम तीन-चौथाई वयस्क पुरुष आबादी विद्रोह में शामिल थी। इस इलाक़े को लंबी लड़ाई के बाद मार्च 1858 में जाकर ही अंग्रेज़ दोबारा अपने नियंत्रण में ले पाए।

अंग्रेज़ों ने सैनिक ताकत का भयानक पैमाने पर इस्तेमाल किया। लेकिन यह उनका एकमात्र हथियार नहीं था। वर्तमान उत्तर प्रदेश के एक विशाल भू-भाग में बड़े भूस्वामियों और काश्तकारों ने मिलकर अंग्रेज़ों का विरोध किया था। अंग्रेज़ों ने इस एकता को तोड़ने के लिए

चित्र 11.9
सिंकदरा बाग, चित्रकार फ़ेलिस बिएतो, 1858
यहाँ हमें एक ज़माने में नवाब वाजिद अली शाह द्वारा बनवाए गए रंग बाग (प्लेज़र गार्डन) के खंडहरों में चार आदमी दिखायी दे रहे हैं। 1857 में इसकी रक्षा करने वाले 2000 से ज़्यादा विद्रोही सिपाहियों को कैम्पबेल के नेतृत्व में ब्रिटिश सैनिकों ने मार डाला था। अहाते में पड़े नरकंकाल विद्रोह की निरर्थकता की एक ठंडी चेतावनी देते हैं।

बड़े ज़मींदारों को आश्वासन दिया कि उन्हें उनकी जागीरें लौटा दी जाएँगीं। विद्रोह का रास्ता अपनाने वाले ज़मींदारों को ज़मीन से बेदख़ल कर दिया गया और जो वफ़ादार थे उन्हें ईनाम दिए गए। बहुत सारे ज़मींदार या तो अंग्रेज़ों से लड़ते-लड़ते मारे गए या भागकर नेपाल चले गए जहाँ उन्होंने बीमारी व भूख से दम तोड़ दिया।

5. विद्रोह की छवियाँ

हम इस विद्रोह, विद्रोहियों की गतिविधियों और उन पर किए गए दमन के तरीकों के बारे में किस तरह जान सकते हैं?

जैसा कि हम पीछे देख चुके हैं, विद्रोहियों की सोच के बारे में हमारे पास बहुत कम दस्तावेज़ मौजूद हैं। हमारे पास विद्रोहियों की कुछ घोषणाएँ, अधिसूचनाएँ तथा नेताओं के पत्र हैं। लेकिन अब तक ज़्यादातर इतिहासकार अंग्रेज़ों द्वारा लिखे गए दस्तावेज़ों की रोशनी में ही विद्रोहियों की कार्रवाइयों पर चर्चा करते आ रहे हैं।

यह तो है ही कि इस बारे में सरकारी ब्योरों की कमी नहीं है : औपनिवेशिक प्रशासक और फ़ौजी अपनी चिट्ठियों, डायरियों, आत्मकथाओं और सरकारी इतिहासों में अपने-अपने ब्योरे दर्ज कर गए हैं। असंख्य मेमों और नोट्स, परिस्थितियों के आकलन एवं विभिन्न रिपोर्टों के ज़रिए भी हम सरकारी सोच और अंग्रेज़ों के बदलते रवैये को समझ सकते हैं। आज इनमें से बहुत सारे दस्तावेज़ों को सैनिक विद्रोह रिकॉर्ड्स पर केंद्रित खंडों में संकलित किया जा चुका है। ये दस्तावेज़ हमें अफ़सरों के भीतर मौजूद भय और बैचेनी तथा विद्रोहियों के बारे में उनकी सोच का पता देते हैं। ब्रिटिश अख़बारों और पत्रिकाओं में इस विद्रोह की जो कहानियाँ छपीं उनमें सैनिक विद्रोहियों द्वारा की गई हिंसा को बड़े लोमहर्षक शब्दों में छापा जाता था। ये कहानियाँ जनता की भावनाओं को भड़काती थीं तथा प्रतिशोध और सबक सिखाने की माँगों को हवा देती थीं।

अंग्रेज़ों और भारतीयों द्वारा तैयार की गई तसवीरें सैनिक विद्रोह का एक महत्त्वपूर्ण रिकॉर्ड रही हैं। इस विद्रोह के बारे में कई चित्र, पेंसिल से बने रेखांकन, उत्कीर्ण चित्र, पोस्टर, कार्टून, और बाज़ार-प्रिंट उपलब्ध हैं। आइए, उनमें से कुछ को देखें और जाने कि वे हमें क्या बताते हैं।

5.1 रक्षकों का अभिनंदन

अंग्रेज़ों द्वारा बनाई तसवीरों को देखने पर तरह-तरह की भावनाएँ और प्रतिक्रियाएँ पैदा होती हैं। उनमें से कुछ में अंग्रेज़ों को बचाने और विद्रोहियों को कुचलने वाले अंग्रेज़ नायकों का गुणगान किया गया है। 1859 में टॉमस जोन्स बार्कर द्वारा बनाया गया चित्र 'रिलीफ़ ऑफ़ लखनऊ' (लखनऊ की राहत) इसी श्रेणी का एक उदाहरण है। जब

चित्र 11.10
“द रिलीफ़ ऑफ़ लखनऊ” चित्रकार टॉमस जोन्स बार्कर, 1859

विद्रोही टुकड़ियों ने लखनऊ पर घेरा डाल दिया तो लखनऊ के कमिश्नर हेनरी लॉरेंस ने ईसाइयों को इकट्ठा किया और बेहद सुरक्षित रेज़ीडेंसी में पनाह ले ली। बाद में लॉरेंस तो मारा गया किंतु कर्नल इंगलिस के नेतृत्व में रेज़ीडेंसी सुरक्षित रहा। 25 सितंबर को जेम्स ऑट्रम और हेनरी हेवलॉक वहाँ पहुँचे, उन्होंने विद्रोहियों को तितर-बितर कर दिया और ब्रिटिश टुकड़ियों को नयी मजबूती दी। 20 दिन बाद भारत में ब्रिटिश टुकड़ियों का नया कमांडर कॉलिन कैम्पबेल भारी तादाद में सेना लेकर वहाँ पहुँचा और उसने ब्रिटिश रक्षकसेना को घेरे से छुड़ाया। अंग्रेज़ों के बयानों में लखनऊ की घेरेबंदी उत्तरजीविता, बहादुराना प्रतिरोध और ब्रिटिश सत्ता की निर्विवाद विजय की कहानी बन गई।

बार्कर की पेंटिंग कैम्पबेल के आगमन के क्षण का जश्न मनाती है। कैन्वस के मध्य में कैम्पबेल, ऑट्रम और हेवलॉक, इन तीन ब्रिटिश नायकों की छवियाँ हैं। उनके इर्द-गिर्द खड़े लोगों के हाथों को देखने पर दर्शक की निगाह चित्र के मध्य भाग की तरफ़ चली जाती है। ये नायक एक ऐसे स्थान पर खड़े हैं जहाँ काफ़ी उजाला है, जिनके अगले हिस्से में परछाईं है और पिछली तरफ़ टूटा-फूटा रेज़ीडेंसी दिखाई देता है। चित्र के अगले भाग में पड़े शव और घायल इस घेरेबंदी के दौरान हुई मारकाट की गवाही देते हैं जबकि मध्य भाग में घोड़ों की विजयी तसवीरें इस तथ्य पर ज़ोर देती हैं कि अब ब्रिटिश सत्ता और नियंत्रण बहाल हो चुका है। इस तरह के चित्रों से अंग्रेज़ जनता में अपनी सरकार के प्रति

भरोसा पैदा होता था। इन चित्रों से उन्हें यह लगता था कि संकट की घड़ी जा चुकी है और विद्रोह ख़त्म हो चुका है : अंग्रेज़ जीत चुके हैं।

5.2 अंग्रेज़ औरतें तथा ब्रिटेन की प्रतिष्ठा

अख़बारों में छपी ख़बरों का जनता की कल्पना और मनोदशा पर भारी असर होता है। वे घटनाओं के बारे में लोगों की भावनाओं और सोच को तय करती हैं। भारत में औरतों और बच्चों के साथ हुई हिंसा की कहानियों को पढ़कर ब्रिटेन की जनता प्रतिशोध और सबक सिखाने की माँग करने लगी। अंग्रेज़ अपनी सरकार से मासूम औरतों की इज़्ज़त बचाने और निस्सहाय बच्चों को सुरक्षा प्रदान करने की माँग करने लगे। कलाकारों ने सदमे और पीड़ा की अपनी चित्रात्मक अभिव्यक्तियों के ज़रिये इन भावनाओं को आकार प्रदान किया।

जोज़ेफ़ नोएल पेटन ने सैनिक विद्रोह के दो साल बाद "इन मेमोरियम" ('स्मृति में', चित्र 11.11) बनाई। इस चित्र में अंग्रेज़ औरतें और बच्चे एक घेरे में एक-दूसरे से लिपटे दिखाई देते हैं। वे लाचार और मासूम दिख रहे हैं, मानो एक भयानक घड़ी की आंशका में हैं।

चित्र 11.11
"इन मेमोरियम", चित्रकार जोज़ेफ नोएल पेटन, 1859

चित्र 11.12
कानपुर में सिपाहियों से अपनी रक्षा करती मिस व्हीलर।

वे अपनी बेइज़्ज़ती, हिंसा और मृत्यु का इंतज़ार कर रहे हैं। "इन मेमोरियम" में भीषण हिंसा नहीं दिखती : उसकी तरफ़ सिर्फ़ एक इशारा है। यह दर्शक की कल्पना को झिंझोड़ती है और उसमें गुस्से और बेचेनी का भाव पैदा करती है। इसमें विद्रोहियों को हिंसक और बर्बर बताया गया है हलांकि वे चित्र में अदृश्य हैं। पृष्ठभूमि में आप ब्रिटिश टुकड़ियों को रक्षक के तौर पर आगे बढ़ते देख सकते हैं।

कुछ अन्य रेखाचित्रों व पेंटिंग्स में हमें औरतें अलग तेवर में दिखाई देती हैं। इनमें वे विद्रोहियों के हमले से अपना बचाव करती हुई नज़र आती हैं। उन्हें वीरता की मूर्ति के रूप में दर्शाया गया है। चित्र 11.12 में मिस व्हीलर मध्य में दृढ़तापूर्वक खड़ी है। वह अकेले ही विद्रोहियों को मौत की नींद सुलाते हुए अपनी इज़्ज़त की रक्षा करती है। तमाम ब्रिटिश चित्रों की तरह यहाँ भी विद्रोहियों को दानवों के रूप में दर्शाया गया है। यहाँ चार कद्दावर आदमी हाथों में तलवारें और बंदूक लिये एक अकेली औरत के ऊपर हमला कर रहे हैं। यहाँ इज़्ज़त और ज़िंदगी की रक्षा के लिए औरत के संघर्ष की आड़ में दरअसल एक गहरे धार्मिक विचार को प्रस्तुत किया गया है - यह ईसाइयत की रक्षा का संघर्ष है। चित्र में धरती पर पड़ी किताब बाइबल है।

चित्र 11.13
जस्टिस (न्याय), पन्च, *12 सितंबर 1857*
चित्र के नीचे पट्टी पर लिखा है–"कानपुर में हुए भीषण जनसंहार के समाचार ने समूचे इंग्लैंड में प्रतिशोध की गहरी चाह और भयानक अपमान का भाव पैदा कर दिया है।"

5.3 प्रतिशोध और सबक़

जैसे-जैसे ब्रिटेन में ग़ुस्से और सकते का माहौल बनता गया, बदले की माँग बुलंद होती गई। विद्रोह के बारे में प्रकाशित चित्रों एवं ख़बरों ने ऐसा माहौल रच दिया जिसमें हिंसक दमन और प्रतिशोध को लाज़िमी और वाजिब माना जाने लगा। माहौल ऐसा था मानो न्याय के मूल्यों की रक्षा के लिए ब्रिटिश प्रतिष्ठा और सत्ता को दी जा रही चुनौती को निर्ममता से कुचलना ज़रूरी था। विद्रोह से आतंकित अंग्रेज़ों को लगता था कि उन्हें अपनी अपराजयता का प्रदर्शन करना ही चाहिए। ऐसी ही एक तसवीर (चित्र 11.13) में हमें न्याय की एक रूपकात्मक स्त्री छवि दिखाई देती

चित्र 11.14
चित्र के नीचे पट्टी पर लिखा है– "बंगाल टाइगर से ब्रिटिश शेर का प्रतिशोध", पन्च, *1857*

➲ तसवीर से क्या सोच निकलती है? शेर और चीते की तसवीरों के माध्यम से क्या कहने का प्रयास किया गया है? औरत और बच्चे की तसवीर क्या दर्शाती है?

है जिसके एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में ढाल है। उसकी मुद्रा आक्रामक है : उसके चेहरे पर भयानक गुस्सा और बदला लेने की तड़प दिखाई देती है। वह सिपाहियों को अपने पैरों तले कुचल रही है जबकि भारतीय औरतों और बच्चों की भीड़ भय से काँप रही है।

इनके अलावा भी ब्रिटिश प्रेस में असंख्य दूसरी तसवीरें और कार्टून थे जो निर्मम दमन और हिंसक प्रतिशोध की ज़रूरत पर ज़ोर दे रहे थे।

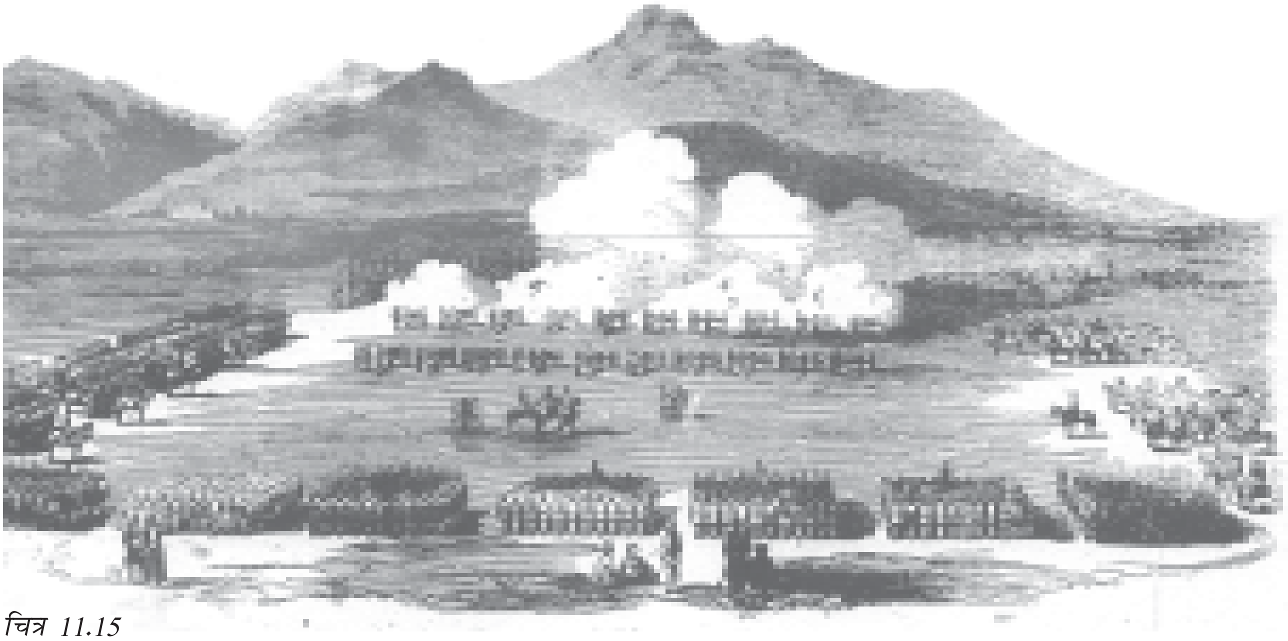

चित्र 11.15
एग्ज़ीक्यूशन ऑफ़ म्यूटिनियर्स ऐट पेशावर : ब्लोइंग फ्रॉम द गन्स (पेशावर में विद्रोहियों को मृत्युदंड : तोप से उड़ाते हुए), इलस्ट्रेटेड लंदन न्यूज़, 3 अक्टूबर 1857
यहाँ मृत्युदंड का दृश्य एक नाटक के रंगमंच जैसा दिखाई देता है – निर्मम सत्ता का नाट्य मंचन। पूरे दृश्य पर वर्दियों में सजे घुड़सवार सैनिक और सिपाही हावी दिखाई देते हैं। उन्हें अपने साथी सिपाहियों की मृत्यु का दृश्य देखना है और विद्रोह के भयानक परिणामों को महसूस करना है।

चित्र 11.16
एग्ज़ीक्यूशन ऑफ़ म्यूटिनियर्स ऐट पेशावर (पेशावर में विद्रोहियों को मृत्युदंड), इलस्ट्रेटेड लंदन न्यूज़, *3 अक्टूबर 1857.*
मृत्युदंड के इस दृश्य में 12 विद्रोही एक क़तार में लटके हुए हैं और चारों तरफ़ तोपें तैनात हैं। यह सामान्य दंड का दृश्य नहीं है, यह दहशत का प्रदर्शन है। लोगों को ये अहसास कराने की कोशिश की जा रही है कि सज़ा किसी बंद जगह पर नहीं बल्कि लोगों के बीच भी दी जा सकती है। उसे खुले में नाटकीय ढंग से प्रस्तुत करना ज़रूरी था।

5.4 दहशत का प्रदर्शन

प्रतिशोध और सबक़ सिखाने की चाह इस बात में भी प्रतिबिम्बित होती है कि विद्रोहियों को कितने निर्मम ढंग से मौत के घाट उतारा गया। उन्हें तोपों के मुहाने पर बाँधकर उड़ा दिया गया या फ़ाँसी पर लटका दिया। इन सज़ाओं की तसवीरें आम पत्र-पत्रिकाओं के ज़रिये दूर-दूर तक पहुँच रही थीं।

5.5 दया के लिए कोई जगह नहीं

जब प्रतिशोध के लिए ही शोर मच रहा हो, ऐसे समय पर नर्म सुझाव मज़ाक का पात्र बन कर ही रह जाते हैं। जब गवर्नर-जनरल कैनिंग ने ऐलान किया कि नर्मी और दया भाव से सिपाहियों की वफ़ादारी हासिल करने में मदद मिलेगी तो ब्रिटिश प्रेस में उसका मज़ाक उड़ाया गया।

हास्यपरक व्यंग्य की ब्रिटिश पत्रिका *पन्च* के पन्नों में प्रकाशित एक कार्टून में कैनिंग को एक भव्य नेक बुजुर्ग के रूप में दर्शाया गया। उसका

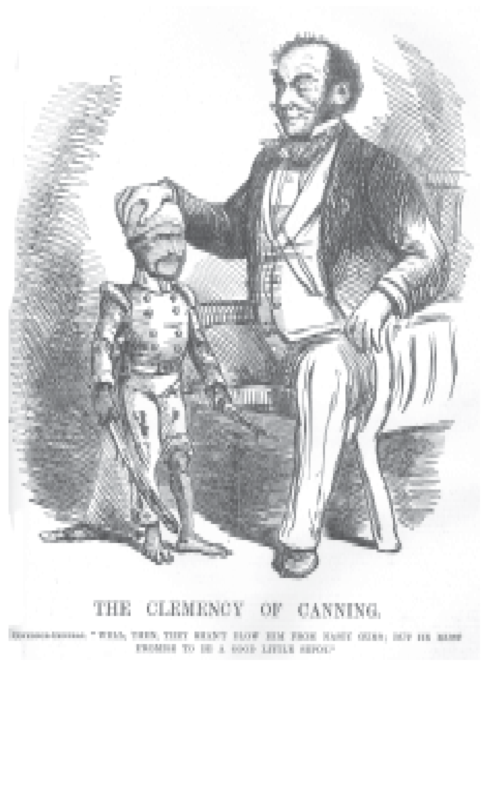

चित्र 11.17
"द क्लिमेंसी ऑफ़ केनिंग" (केनिंग का दयाभाव), पन्च, *24 अक्टूबर 1857*
नीचे की पट्टी : गवर्नर जनरल : "बिलकुल सही, फिर वे उसे घिनौनी बंदूकों से नहीं उड़ाएँगे बशर्ते वो एक अच्छा सिपाही बनने का वादा करे।"

हाथ एक सिपाही के सिर पर है जो अभी भी नंगी तलवार और कटार लिए हुए है और दोनों से ख़ून टपक रहा है (चित्र 11.17)। यह एक ऐसी छवि थी जो उस समय की बहुत सारी ब्रिटिश तसवीरों में बार-बार सामने आती थी।

5.6 राष्ट्रवादी दृश्य कल्पना

बीसवीं सदी में राष्ट्रवादी आंदोलन को 1857 के घटनाक्रम से प्रेरणा मिल रही थी। इस विद्रोह के इर्द-गिर्द राष्ट्रवादी कल्पना का एक विस्तृत दृश्य जगत बुन दिया गया था। इसको प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के रूप में याद किया जाता था जिसमें देश के हर तबके के लोगों ने साम्राज्यवादी शासन के ख़िलाफ़ मिलकर लड़ाई लड़ी थी।

इतिहास लेखन की तरह कला और साहित्य ने भी 1857 की स्मृति को जीवित रखने में योगदान दिया। विद्रोह के नेताओं को ऐसे नायकों के रूप में पेश किया जाता था जो देश को रणस्थल की तरफ़ ले जा रहे हैं। उन्हें लोगों को दमनकारी साम्राज्यवादी शासन के ख़िलाफ़ उत्तेजित करते चित्रित किया जाता था। एक हाथ में घोड़े की रास और दूसरे हाथ में तलवार थामे अपनी मातृभूमि की मुक्ति के लिए लड़ाई लड़ने वाली रानी के शौर्य का गौरवगान करते हुए कविताएँ लिखी गईं। रानी झाँसी को एक ऐसी मर्दाना शख़्सियत के रूप में चित्रित किया जाता था जो दुश्मनों का पीछा करते हुए और ब्रिटिश सिपाहियों को मौत की नींद सुलाते हुए आगे बढ़ रही है। देश के विभिन्न भागों में बच्चे सुभद्रा कुमारी चौहान की इन पंक्तियों को पढ़ते हुए बड़े हो रहे थे : *"खूब लड़ी मर्दानी वो तो झाँसी वाली रानी थी।"* लोक छवियों में रानी लक्ष्मीबाई को प्राय: फ़ौजी पोशाक में घोड़े पर सवार और एक हाथ में तलवार लिए दिखाया जाता है – अन्याय और विदेशी शासन के दृढ़ प्रतिरोध का प्रतीक।

इन तसवीरों से पता चलता है कि उन्हें बनाने वाले चित्रकार इन घटनाओं को कैसे देखते थे, उनके अहसास क्या थे और वे क्या कहना चाहते थे। इन चित्रों और कार्टूनों के माध्यम से हम उस जनता के बारे में जान सकते हैं जो उन चित्रों की तारीफ़ या आलोचना करती थी, उनकी नक़लों को ख़रीद कर घरों में सजाती थी।

ये तस्वीरें केवल अपने समय की भावनाओं और अहसासों को ही प्रतिबिंबित नहीं कर रही थीं। उन्होंने संवेदनाओं को भी शक्ल दी। ब्रिटेन में छप रहे चित्रों से उत्तेजित वहाँ की जनता विद्रोहियों को भयानक बर्बरता के साथ कुचल डालने के लिए आवाज़ उठा रही थी। दूसरी तरफ़ भारतीय राष्ट्रवादी चित्र हमारी राष्ट्रवादी कल्पना को निर्धारित करने में मदद कर रहे थे।

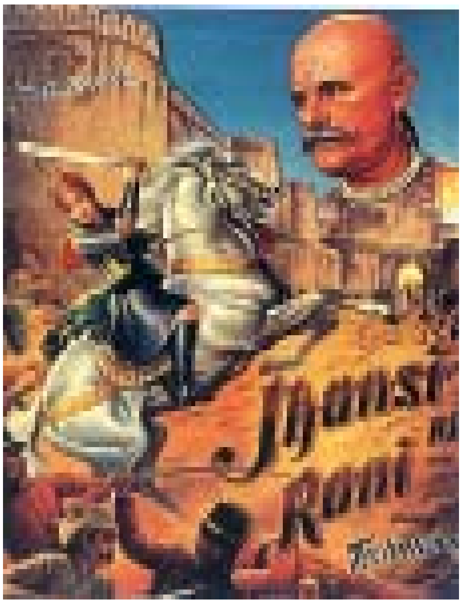

चित्र 11.18
फ़िल्मों और पोस्टरों ने रानी लक्ष्मीबाई की छवि को एक मर्दाना योद्धा के रूप में स्थापित करने में मदद की।

चर्चा कीजिए...

इस भाग में दिए गए प्रत्येक चित्र के विभिन्न तत्वों की जाँच कीजिए और चर्चा कीजिए कि उनके ज़रिए आपको कलाकार की सोच को पहचानने में कैसे मदद मिलती है।

काल-रेखा

1801		अवध में वेलेज़ली द्वारा सहायक संधि लागू की गई
1856		नवाब वाजिद अली शाह को गद्दी से हटाया गया, अवध का अधिग्रहण
1856-57		अंग्रेज़ों द्वारा अवध में एकमुश्त लगान बंदोबस्त लागू
1857	10 मई	मेरठ में "सैनिक विद्रोह"
	11-12 मई	दिल्ली रक्षकसेना में विद्रोह : बहादुर शाह सांकेतिक नेतृत्व स्वीकार करते हैं
	20-27 मई	अलीगढ़, इटावा, मैनपुरी, एटा में सिपाही विद्रोह
	30 मई	लखनऊ में विद्रोह
	मई-जून	सैनिक विद्रोह एक व्यापक जन विद्रोह में बदल जाता है
	30 जून	चिनहाट के युद्ध में अंग्रेज़ों की हार होती है
	25 सितंबर	हेवलॉक और ऑट्रम के नेतृत्व में अंग्रेज़ों की टुकड़ियाँ लखनऊ रेज़ीडेंसी में दाख़िल होती हैं
1858	जून	युद्ध में रानी झाँसी की मृत्यु
	जुलाई	युद्ध में शाह मल की मृत्यु

चित्र 11.19
विद्रोहियों के चेहरे

उत्तर दीजिए (लगभग 100 से 150 शब्दों में)

1. बहुत सारे स्थानों पर विद्रोही सिपाहियों ने नेतृत्व सँभालने के लिए पुराने शासकों से क्या आग्रह किया?
2. उन साक्ष्यों के बारे में चर्चा कीजिए जिनसे पता चलता है कि विद्रोही योजनाबद्ध और समन्वित ढंग से काम कर रहे थे?
3. 1857 के घटनाक्रम को निर्धारित करने में धार्मिक विश्वासों की किस हद तक भूमिका थी?
4. विद्रोहियों के बीच एकता स्थापित करने के लिए क्या तरीके अपनाए गए?
5. अंग्रेज़ों ने विद्रोह को कुचलने के लिए क्या कदम उठाए?

निम्नलिखित पर एक लघु निबंध लिखिए (लगभग 250 से 300 शब्दों में)

6. अवध में विद्रोह इतना व्यापक क्यों था? किसान, ताल्लुक़दार और ज़मींदार उसमें क्यों शामिल हुए?
7. विद्रोही क्या चाहते थे? विभिन्न सामाजिक समूहों की दृष्टि में कितना फ़र्क़ था?
8. 1857 के विद्रोह के बारे में चित्रों से क्या पता चलता है? इतिहासकार इन चित्रों का किस तरह विश्लेषण करते हैं?
9. एक चित्र और एक लिखित पाठ को चुनकर किन्हीं दो स्रोतों की पड़ताल कीजिए और इस बारे में चर्चा कीजिए कि उनसे विजेताओं और पराजितों के दृष्टिकोण के बारे में क्या पता चलता है?

मानचित्र कार्य

10. भारत के मानचित्र पर कलकत्ता (कोलकाता), बम्बई (मुंबई), मद्रास (चेन्नई) को चिह्नित कीजिए जो 1857 में ब्रिटिश सत्ता के तीन मुख्य केंद्र थे। मानचित्र 1 और 2 को देखिए तथा उन इलाकों को चिह्नित कीजिए जहाँ विद्रोह सबसे व्यापक रहा। औपनिवेशिक शहरों से ये इलाक़े कितनी दूर या कितनी पास थे?

परियोजना कार्य (कोई एक)

11. 1857 के विद्रोही नेताओं में से किसी एक की जीवनी पढ़ें। देखिए कि उसे लिखने के लिए जीवनीकार ने किन स्रोतों का उपयोग किया है? क्या उनमें सरकारी रिपोर्टों, अख़बारी ख़बरों, क्षेत्रीय भाषाओं की कहानियों, चित्रों और किसी अन्य चीज़ का इस्तेमाल किया गया है? क्या सभी स्रोत एक ही बात कहते हैं या उनके बीच फ़र्क़ दिखाई देते हैं? अपने निष्कर्षों पर एक रिपोर्ट तैयार कीजिए।
12. 1857 पर बनी कोई फ़िल्म देखिए और लिखिए कि उसमें विद्रोह को किस तरह दर्शाया गया है। उसमें अंग्रेज़ों, विद्रोहियों और अंग्रेज़ों के भारतीय वफ़ादारों को किस तरह दिखाया गया है? फ़िल्म किसानों, नगरवासियों, आदिवासियों, ज़मींदारों और ताल्लुक़दारों के बारे में क्या कहती है? फ़िल्म किस तरह की प्रतिक्रिया को जन्म देना चाहती है?

यदि आप और जानकारी चाहते हैं तो इन्हें पढ़िए :

गौतम भद्रा, 1987
फ़ोर रेबल्स ऑफ़ एटीन फ़िफ़्टी सेवन, सबॉल्टर्न स्टडीज़, खंड 4, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली

विलियन डेलरिम्पल, 2006
दि लास्ट मुग़ल : दि फ़ॉल ऑफ़ ए डायनेस्टी, दिल्ली 1857, पेंग्विन, वाइकिंग, नयी दिल्ली

रूद्रांग्शू मुखर्जी, 1984
अवध इन रिवोल्ट 1857–58, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली

तापती रॉय, 2006
राज ऑफ़ दि रानी, पेंग्विन, नयी दिल्ली

ऐरिक स्टॉक्स, 1980
पैज़ेन्ट्स एंड दि राज, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी, प्रेस, दिल्ली

अधिक जानकारी के लिए आप निम्नलिखित वेबसाइट देख सकते हैं

http://books.google.com
(1857 पर अंग्रेज़ अधिकारियों के विवरणों के लिए)

www.copsey-family.org/allenc/lakshmibai/links.html
(रानी लक्ष्मीबाई के पत्रों के लिए)